नवम्बर 2014 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी



रामाश्रम सत्संग, मथुरा

✹ ✹ ✹
संरक्षक :
परमभागवत ब्रह्मलीन परम संत
पण्डित मिहीलाल जी
❖ ❖ ❖
नवनीत हृदय ब्रह्मलीन परमसंत
डॉ. बृजेन्द्र कुमार जी
❖ ❖ ❖
युगपुरुष परमसंत
श्रीयुत् हेमेन्द्र कुमार जी
❖ ❖ ❖
प्रेममूर्ति ब्रह्मलीन परमसन्त
डॉ. नरेन्द्र कुमार जी
❖ ❖ ❖
पूर्व सम्पादक :
श्री ओम प्रकाश विरल
❖ ❖ ❖
आनरेरी सम्पादक परिवार
सम्पादक :
कृष्णकान्त शर्मा
❖ ❖ ❖
सह-सम्पादक :
रुद्र प्रसाद मिश्र
महेश चन्द्र शर्मा
❖ ❖ ❖
उप-सम्पादक :
अमित कुमार
शिव प्रसाद शर्मा
डॉ. एल. एस. चौहान
❖ ❖ ❖
प्रबन्ध सम्पादक :
आलोक कुमार

ॐ

साधन

नवम्बर-2014

अनुक्रमणिका

क्रमांक	क्या		कहाँ
01.	वेद मंत्र		3
02.	भरोसा		3
03.	भजन	[अमृत बिन्दु]	4
04.	सम्पादकीय		6
05.	ऐसे गुरु भगवान की जय हो	[प्रवचन पराग]	10
06.	त्रिगुणातीत या जीवन मुक्त...	[सुधा-सार]	13
07.	कर्मयोग और हमारी साधना		14
08.	प्रेरक प्रसंग		15
09.	शरणागत दीन पुकार करे...	[गीत]	16
10.	संभवामि दिने-दिने	[अवतरण पर्व पर]	17
11.	विष-पान		20
12.	बिनु गुण कीते भगति न होई		24
13.	साधना का अभिप्रेत-समर्पण योग		26
14.	सच्ची डगर	[कविता]	28
15.	संत दयाबाई का गुरु भक्ति योग	[संत-चरित]	29
16.	निष्काम भक्त		30
17.	समाचार इधर-उधर के		33
18.	सत्संग कार्यक्रम		34

ॐ
साधन

वेद-मंत्र

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि ग्रणीह्या रुव।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ।। – ऋग्वेद 3/10/4

– हे गुरु ब्रह्म! आप हमें प्राप्त हों। हे वाणी प्रदान करने वाले गुरो ! वेदमंत्र समूहों का साक्षात् ज्ञान कराइये। हे समस्त भूतों में निवास करने वाले, सबको अपने में बसाने वाले, मेघ के समान हे गुरुदेव ! हमारे वेदज्ञान, ब्रह्मचर्य, आत्मबल ओर ईश्वरोपासना को भी बढ़ाइए ।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

वर्ष : 82 अंक : 4	नवम्बर–2014	वार्षिक मूल्य : ₹150.00 इस अंक का : ₹16.00

–: भरोसा :–

साईं मोंहि भरोस तुम्हारा।
मोरे बस नहिं अहै एकौ, तुमहिं करो निस्तारा।।
मैं अज्ञान बुद्धि है नाहीं, का करि सकौं बिचारा।
जब तुम लेत पढ़ाय सिखावत, तब मैं प्रकट पुकारा।।
बहुतन भवसागर महं बूड़त, तेहि उबारि कै तारा।।
बहुतन काँ जब कष्ट भयो है, तिन कै कष्ट निवारा।।
अब तो चरन की सरनहिं आयों, गह्यों मैं पच्छ तुम्हारा।।
''जगजीवन' के साईं समरथ, मोहिं बल अहै तुम्हारा।।

— संत श्री जग जीवन दास जी

अमृत बिन्दु :–

भजन

– परमपूज्य गुरुदेव

धर्म के दो रूप होते हैं, एक सम्प्रदाय-धर्म और दूसरा मानवी-धर्म । सम्प्रदाय धर्म वह कहलाता है जिसमें दुनिया के जितने मजहब हैं उन्होंने खास-खास मत और रस्में बना रखीं हैं लेकिन हर रस्म में थोड़ा सा भेद होता है । जो कोई भगवान का पूजन करता है उनमें से कोई निराकारवाद और कोई साकार वाद को मानते हैं। इस तरह अनेक मतों के अनुसार अनेक धर्म हैं पर जो लोग सात्विक जगत के रहने वाले हैं और सात्विक धर्म को मानते हैं उनका भजन बाहरी दिखावे का नहीं होता है, वे लोग बाहरी दिखावट से दूर रहते हैं । भजन के लिए पहले विश्वास रखना बहुत ज़रूरी है । जो श्रद्धा से ईश्वर का भजन करने वाले हैं जो सांसारिक वस्तुओं में आसक्ति नहीं रखते हैं, संसार की तरफ उनका ख्याल नहीं के बराबर रहता है उसी को वैराग्य कहा है । राग और वैराग्य दो चीजें हैं । राग में जीव सांसारिक वस्तुओं में मोह करता रहता है और वैराग्य हो जाने पर सांसारिक वस्तुओं के लिए उसको आसक्ति या मोह नहीं रहता है । राग और वैराग्य से परे एक चीज और होती है जिसको अनुराग कहते हैं ।

मानव एक दिन राग में फँसकर सांसारिक वस्तुओं से लगाव रखता है लेकिन एक दिन ऐसा भी आता है जब उसका उस चीज से लगाव टूट जाता है और उसका वियोग हो जाता है । जब सांसारिक चीजों से उसे वियोग होता है तब उसे दु:ख होता है । संयोग रहने से ही उसे एक दिन वियोग का दु:ख होता है। कहने का मतलब यही है कि सांसारिक वस्तुओं से ममत्व को हटा लेने को ही वैराग्य कहते हैं । जब मानव में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तब उसके जो भी साधन होते हैं उसमें पूर्ण आनंद मिलता है, शान्ति मिलती है और अन्त में उसे भगवान का दर्शन भी होता है ।

भजन करते-करते एक अवस्था ऐसी आती है जिसको अनुराग कहते हैं । अनुराग का मतलब है भगवान से प्रेम हो जाना । राग के बाद वैराग्य का स्थान आता है और उसके बाद अनुराग का । जब मनुष्य अनुराग सहित भगवान का भजन करता है और सांसारिक वस्तुओं में ममत्व न रखकर उसे लात मारता है तो भगवान भी उसको दर्शन देने के लिए तैयार हो जाते हैं । बाहरी कर्म जो सिर्फ दिखावे के लिए किया जाता है उससे ईश्वर दर्शन नहीं देता है जब तक कि वह राग रहित न हो ।

इसलिए जरूरत इस बात की है कि मन जो इतना चलायमान है कि जिसकी चंचलता एक सैकिन्ड के लिए भी नहीं रुकती उसको किसी साधन द्वारा रोका जाय और शान्त किया जाय । जब तक मन की चंचलता को रोका नहीं जाता

तब तक भजन पूर्ण भजन नहीं हो सकता है । बहुत से लोग कहते हैं कि यह बड़ा ही असम्भव काम है । जो करने वाले हैं और जिनमें हिम्मत है और जो इसके लिए पक्का इरादा कर लेते हैं, उनके लिए कोई मुश्किल नहीं है । लेकिन जो डांवाडोल में रहते हैं, जिनके पास हिम्मत नहीं है वे कैसे इस काम को कर सकते हैं । इसलिए जरूरत इस बात की है कि लग लिपट कर इस काम को कर डालो, फिर पूर्ण भजन होने में कोई संदेह नहीं रहेगा । लेकिन यह एक दिन की चीज नहीं है क्योंकि जन्म-जन्मान्तर के कर्म का मल-आवरण आपके भीतर है, वह एक दिन में कैसे दूर हो सकता है ? यही जन्म जन्मान्तर के मल और आवरण जो आपके भीतर भरे पड़े हैं । यह आपके मन को चलायमान कर देते हैं। उसका बीज जो आपके अन्दर बैठा हुआ है, वह संस्कार बन गया है । वही संस्कार चाहे अच्छे संस्कार हों या बुरे संस्कार हों, उसको धो डालना है तभी कहीं जाकर मन स्थिर हो सकता है ।

आप जानते हैं कि एक अणु इतना छोटा होता है जो आँखों से देखा नहीं जा सकता, चाहे वे अणु पानी के हों या पृथ्वी के हों । अणु का हजारवाँ हिस्सा परमाणु होता है जो बहुत ही छोटा होता है । उस परमाणु में एक सेन्टर है जहाँ से धारें निकलती रहती हैं और उसमें हरकत पैदा करती हैं । जिस प्रकार रेडियो की मशीन में बिजली की करेन्ट है और वह करेन्ट शीशे के प्लेट में ठोकर मारकर उसको चलायमान करती है, उसी प्रकार आपके अन्दर जो अच्छे और बुरे संस्कार के बीज भरे पड़े हैं वही मन को ठोकर मार कर चलायमान कर देते हैं इसलिए आपको पहले अपने मन को शान्त करना है। इसके लिए यह जरूरी है कि हमारे मन को जो चीज ठोकर देकर चलायमान कर देती है उसका पहले खात्मा कर देना है ताकि न उसमें चिनगारियाँ फूटेंगी और न आपका मन चलायमान होगा ।

दूसरी बात यह है कि आपको गन्दे विचार वालों के पास से दूर रहना चाहिए क्योंकि गन्दे विचार वालों के संग से भी मन चलायमान हो जाता है । तीसरी बात यह है कि आपके पास जो अच्छे या बुरे संस्कार हैं उनको गुरु की बताई हुई क्रिया या साधन द्वारा दग्ध कर डालें । जब तक वह दग्ध नहीं किये जायेंगे तब तक वह आपके मन को चलायमान करते ही रहेंगे ।

संस्कार भी तीन तरह के होते हैं, तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी। कुछ संस्कार अभ्यास के द्वारा दग्ध हो जाते हैं । जिस प्रकार लिफ्ट के द्वारा एक मंजिल को पार कर दूसरी मंजिलों को पार किया जा सकता है, उसी प्रकार अभ्यास के द्वारा इन मंजिलों को पार किया जा सकता है । पहले अभ्यास के द्वारा जो गन्दे संस्कार आप में भरे पड़े हैं उनका पर्दा हटेगा । कुछ संस्कार वायु में फेंक दिये जाते हैं मगर कुछ साथ भी रखने पड़ते हैं जो साधना में सहायता देते हैं, यह सतोगुणी संस्कार होते हैं । आगे जब साधना पूर्ण हो जाती है तो सतोगुणी संस्कार भी छोड़ दिये जाते हैं और साधक त्रिगुणातीत हो जाता है उसके बाद धीरे-धीरे सब मल और आवरणों का पर्दा हट जायेगा। तब आपका भजन पूर्ण होगा और आप शान्ति और आनन्द का अनुभव करेंगे। इसके लिए जरूरत यह है कि आपको पन्द्रह बीस मिनट नित्य सुबह और शाम निश्चित समय पर अभ्यास करना होगा और तब आप देखेंगे कि थोड़े ही दिनों के उपरान्त आपकी कितनी आत्मोन्नति होती है । ✦✦✦

सम्पादकीय

जैसा मैंने उनको देखा

हाल ही में चार सितम्बर 2014 को हमारे आराध्यदेव परम पूज्य डा. बृजेन्द्र कुमार जी महाराज का अवतरण दिवस जगह-जगह मनाया गया । आपके अवतरण के पहले एक घटना घटी । परम पूज्य गुरु महाराज के इनसे पहले एक और पुत्र पैदा हुए थे उनका शरीर जल्दी शान्त हो गया । आप जानते हैं कि पहले पुत्र के निधन से माता-पिता को कितना दुःख होता है । उस समय फतेहगढ़ में परम पूज्य गुरु महाराज के गुरु, महात्मा रामचन्द्र जी महाराज को जब यह शोक समाचार मालूम पड़ा तो एक पत्र लिखा कि डाक्टर साहब दुःख की बात नहीं है जो आपकी अगली सन्तान होगी वह औलिया होगा । अध्यात्म का अवतरण होगा और वास्तव में जब आपका अवतरण हुआ तो जैसा परम पूज्य महात्मा रामचन्द्र महाराज जी ने कहा था वैसा ही हुआ । परमात्मा की पहली देन निर्मल काया होती है । पहला वरदान परम पूज्य डा. बृजेन्द्र कुमारजी को यही मिला । निर्मल सुन्दर शरीर हर तरफ से सुन्दर । उनकी माँ ने जब उनको देखा तो कह उठीं यह तो साक्षात् भगवान कृष्ण पैदा हुये हैं । इतनी सुन्दरता थी कि लोग देख कर मुग्ध हो जाते थे । सुन्दर सुडौल शरीर बड़े-बड़े नेत्र और मधुर वाणी । सर्वांग सुन्दर । दूसरा वरदान-अध्यात्म ज्ञान । मैंने पुराने साधन में पढ़ा है जब भी गुरु महाराज ध्यान कराते थे परम पूज्य को अपने पास बिठा लेते थे । लोगों की धारणा होने लगी कि शायद पुत्र स्नेह के कारण स्टेज के ऊपर अपने पास बिठा लेते हैं । गुरु महाराज ने इस धारणा को निर्मूल करते हुये कहा मैं इसलिये इनको ऊपर बिठाता हूँ क्योंकि इसकी अवस्था मुझसे भी आगे की है । गुरु महाराज की कृपा से आपको दोनों ही चीजें मिलीं सुन्दर काया और अध्यात्म ज्ञान । हमें तीन दृष्टि मिलती हैं । एक दृष्टि हमारी स्थूल नेत्रों की जिसके द्वारा सूर्य के प्रकाश में हम संसार के सब पदार्थों को देखते हैं । दूसरी दृष्टि ज्ञान की दृष्टि जिसके द्वारा ज्ञान से तत्वों को जानते हैं । तीसरी आत्म दृष्टि— आत्मा से आत्मा को जानते हैं । केवल एक दृष्टि से हम किसी को पूर्ण रूप से पहचान नहीं पाते । आप लोगों ने सुना होगा अष्टावक्र राजा जनक के दरबार में गये । तो उनका टेढ़ा-मेढ़ा शरीर, काला कलूटा स्वरूप देख कर दरबारी हँसने लगे । अरे यह कौन दरबार में आ गया है । अष्टावक्रजी उन दरबारियों से भी ज्यादा जोर से हँसने लगे । उनसे पूछा गया आप क्यों हँस रहे हो ? मुनिवर ने कहा आप लोग पहले हँसे तो आप पहले बताओ आप क्यों हँसे ? दरबारियों ने कहा हम यह देख कर हँसे कि इस

दरबार में अच्छे-अच्छे विद्वान आये पर कोई राजा को आत्म ज्ञान नहीं करा सका लेकिन आप अंग-भंग, कुरूप क्या ज्ञान करायेंगे ? फिर दरबारियों ने उनके हँसने का कारण पूछा । अष्टावक्रजी ने कहा मैं इसलिये हँसा क्योंकि मैंने सुना था कि राजा जनक के दरबार में बहुत ज्ञानी विद्वान पुरुष रहते हैं लेकिन यहाँ आके देखा कि यहाँ तो चर्मकारों का जमावड़ा है । दरबारी गुस्से में बोले क्या कहते हैं आप ? हम आपको चर्मकार दिखते हैं? अष्टावक्रजी ने कहा सच कहता हूँ। आप लोगों ने मेरा चर्म देखा मेरा शरीर देखा । ज्ञान न टेढ़ा-मेढ़ा होता है, न काला-गोरा होता है। ज्ञान की दृष्टि ज्ञान से ही प्राप्त होती है । जिन्हें ज्ञान की दृष्टि प्राप्त है वही जान सकता है सामने वाला व्यक्ति कितना ज्ञानी है । मैंने परम संत डा. बृजेन्द्र कुमार जी महाराज जिनको हम प्रेम से बड़े चाचाजी कहते थे स्थूल एवं ज्ञान की दृष्टियों से देखा । सुन्दर काया, चमचमाता सुन्दर सुडौल शरीर । बैठ जाते थे तो ऐसा मालूम पड़ता था कि अनेक सितारों के बीच चन्द्रमा का उदय हो गया हो । लोग चकित होके पूछते थे यह महापुरुष कौन हैं ? दूसरी ज्ञान की दृष्टि से देखा तो पाया आप बड़े-बड़े कठिन प्रश्नों का उत्तर बहुत ही सरलता से दे देते थे । बहुत कम बात करते हुये किसी को सहज कर देते थे । यहाँ तक देखा कितनी ही शंकायें हमारे मन में हों, कितने विचार उठ रहे हैं लेकिन जहाँ उनके सामने बैठ गये, उनका दर्शन कर लिया सब शंकाओं का समाधान हो गया, सब विचार शान्त हो गये । स्थूल और ज्ञान की दृष्टि से उनको देखा और दोनों से उनको पूर्ण पाया । तीसरी दृष्टि आत्म दृष्टि थी नहीं । लेकिन जिनके पास तीसरी दृष्टि थी- परम पूज्य पंडितजी महाराज उन्होंने कहा भाई परम पूज्य डा. बृजेन्द्र जी इतना ही नहीं हैं आज विश्व में इनके समान दूसरा संत और कोई है नहीं, ये अद्वितीय हैं । पूज्य पंडितजी महाराज ने अपनी आत्म दृष्टि से उनका अन्तर देखा । देखा कहाँ बैठे हुये हैं । हमने भी देखा परम पूज्य को दिव्य दृष्टि मिली हुयी थी । हरेक का सम्मान करना, हरेक में अपने गुरु महाराज का दर्शन करना । उनको बहुत दुःख होता था यह देखकर कि गुरु महाराज के दरबार में हीरे लुटाये जा रहे हैं और हम सब कौड़ियाँ बटोर रहे हैं । कहते थे यहाँ अमृत बरस रहा है और हम सब विष पी रहे हैं । अरे ऐसा क्यों कर रहे हो भाई ? कहते थे क्वालिटी लाओ अपने जीवन में । गुरु महाराज की चीज धारण करो अपने में । साधारण चीज यहाँ नहीं बट रही है । उनका विचार यह था कि गुरु कृपा से यहाँ अध्यात्म ज्ञान बरस रहा है और हम उसकी उपेक्षा कर रहे हैं, ले नहीं रहे । अन्तर में वेदना होती थी उन्हें कि भाई कितना सुन्दर अवसर मिला हमें और हम समझ नहीं रहे और यूँ ही समय गवां रहे हैं । कहते थे क्यों ऐसा कर रहे हो । आत्म ज्ञान भर लो अपने में । तुम्हारा जीवन सुन्दर बन जायेगा । अमूल्य समय है । लेकिन जैसे एक बालक सोता रहता है माँ जगाती है जाग जाता है फिर सो जाता है । हमारी भी नींद ऐसे ही थी सुनते भी थे, समझते भी थे लेकिन फिर वही माया का परदा आ जाता था । उनकी वाणी को समझ नहीं पाये । दुःख रह गया । उनका हृदय

कैसा था ? शास्त्र में अध्यात्म पथ की तीन अवस्थायें लिखी हैं । ज्ञान, योग और भक्ति । ज्ञान होना, परमात्मा से योग होना और उसके बाद भक्ति की अवस्था आती है । हमने देखा कि उन्हें पूर्ण ज्ञान था । साथ-साथ यह भी देखा उनका अपने गुरु से पूर्ण योग हो गया था । आत्मा से योग हो गया था । उसका प्रभाव था उनके चेहरे पर झलकता हुआ तेज, उनकी मधुर वाणी, उनका मधुर व्यवहार, यह सब गुण योग होने का प्रतीक थे । वास्तव में अन्तर से कितने शुद्ध हैं, कितना प्रेम बरसाते हैं, कहीं अहम् नहीं । एक बार की घटना है । हम लोगों को जम्मू जाना था प्रोग्राम के लिये । परमपूज्य साथ जाने को थे। मथुरा से ट्रेन पकड़नी थी । हम जाने वाले तीन चार लोग मथुरा पहुँच गये । ट्रेन लेट हो गई । हम सब बाहर बैठे हुये थे आप अन्दर थे । विचार हुआ ध्यान कर लें कुछ देर । हम लोग ध्यान में बैठ गये । ध्यान चलता रहा जब 'बस' कहने की नौबत आई तो देखा पीछे परमपूज्य स्वयं बैठे हैं। कौन बस कहे? कैसे कहे ? पीछे कब चुप-चाप आके बैठ गये किसी को मालूम नहीं चला । खैर ध्यान समाप्त हुआ । उन्होंने कहा खाना खाओ । हम तीन चार लोग थे । अन्दर खाना खाने गये देखा बड़ी माताजी पूड़ी बेल रही हैं । जिया माँ सेंक रही हैं, और वे स्वयं परोस रहें हैं । सेवा ! कितनी तन्मयता से कर रहे थे । हृदय गद्-गद् हो गया। अरे ! अहम् का नामो निशान नहीं । कितना सुन्दर व्यवहार है । उनके हृदय के बारे में क्या कहें । कितना कोमल था । उनकी आँखें बरसती थीं। जब गरीबी से जूझती विधवा स्त्रियों की व्यथा सुनते थे । उनका दिल रोता था उन विद्यार्थियों के लिये जो धन के अभाव के कारण पढ़ नहीं पा रहे हैं । आँखें बरसती थीं ऐसे भाईयों के लिये जो धन के अभाव के कारण बीमारी का इलाज नहीं कर पाते थे । करुणावश उन्होंने अपना सारा धन जो उन्हें रिटायरमेंट के समय मिला था जिया माँ मेमोरियल के नाम से एक ट्रस्ट बना के सौंप दिया । इस ट्रस्ट का काम 'सेवा' तय किया गया। आज भी यह ट्रस्ट बहुत सुन्दर सेवा कार्य कर रहा है । मैंने उनका प्रेम देखा । साधना का ध्येय केवल ज्ञान प्राप्त करना या योग ही नहीं है । साधना का ध्येय है हमारे अन्दर भक्ति पैदा हो जाये । जब किसी जीव का परमात्मा से योग हो जाता है तो उसके प्रकृति के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं । निर्मल दृष्टि हो जाती है, हृदय में प्रेम भर जाता है । और यह प्रेम और बारीक होते-होते भक्ति बन जाता है । हमने यही देखा है कितनी कृपा करने वाले थे, कितने दयालु थे कितनी कोमलता उनके हृदय में थी । उनकी अवस्था का उदाहरण रामायण में मिलता है । भगवान राम भक्ति का ज्ञान देते हुये शबरी को बतलाते हैं 'नवम सरल सब सन छलहीना मम भरोस हियँ हरष न दीना । परम पूज्य में यह सारे गुण थे, पूर्ण सरलता । बाहर से मालूम पड़ते थे कितने गम्भीर । बात करने की हिम्मत नहीं होती थी पर जब बात की तो देखा कितने मधुर कितना कोमल हृदय । हमेशा यह भाव रहता था जैसा गुरु महाराज चाहेंगे वही होगा । कभी अपनी बात नहीं कही, कुछ और नहीं कहा बस एक ही विश्वास गुरु महाराज ही सब करेंगे । भक्ति वह नहीं है जो

व्यक्ति के हृदय में ही केवल नहीं होती परमात्मा के हृदय में भी उत्पन्न होती है । परमात्मा और जीव दोनों के हृदय में मिलने की वेदना पैदा होती है और जिसका प्रतीक होता है आँखों में आँसू । परम पूज्य डा. बृजेन्द्र कुमारजी महाराज की आँखें हर समय सजल रहती थीं। जब भी उनके विशाल नयनों पर मेरी नजर गई तो आँसू छलकते हुये पाया । एक बार की बात है । हम लोग सिवान गये हुये थे । लौटते हुये उनकी आँखों में इन्फेक्शन हो गया । मुझसे कहा दवा बतलाओ इसकी । स्वयं डॉक्टर थे लेकिन मुझसे कहा दवा लाओ, दवा लाया । उन्होंने कहा तुम्हारा काम दोनों टाईम मेरी आँखों में दवा डालना होगा । मैं संकोची था, उनके पास बहुत कम जाता था । पर मुझे वह काम दिया कि मैं सुबह शाम उनकी आँखों में दवा डालूँ । दवा डालने जाता था । बड़े-बड़े नेत्र थे । वह दृश्य भुलाया नहीं जाता है । आभावान चेहरे पर इतने सुन्दर नेत्र और वे नेत्र हर समय सजल । प्रवचन कम आँसू ज्यादा । हर समय आँसू निकलते रहते थे । बहुत भाईयों ने देखा होगा कि अक्सर प्रसाद लगाते वक्त आधी बात ही कह पाते थे आधी बात आँसू में उलझ जाती थी । प्रेम छलक आता था । भक्ति निर्मल हो गई थी । आँखें हर समय भरी रहती थीं । जहाँ गुरु महाराज का नाम आया आँखें छलक आती थीं । वह अवस्था हमने आपने देखी । कितना सुन्दर वह स्वरूप था । सारा समाज उनके भाव में निमग्न हो जाता था । वास्तव में वे क्या थे किस स्वरूप में आये थे और क्या देना चाहते थे क्या दे गये यह हमारा हृदय ही जानता है । मैंने एक जगह पढ़ा था अध्यात्म ज्ञान लेने के उत्तराधिकारी दो ही व्यक्ति होते हैं । पहला व्यक्ति वह होता है जिसने गुरु को पिता मान लिया है । गुरु का भाव नहीं रहा पिता पुत्र का भाव आ गया वह व्यक्ति उत्तराधिकारी होता है । और अगर ऐसा हो जहाँ गुरु ही पिता हो पुत्र शिष्य हो तो वहाँ पिता पुत्र का सम्बन्ध न होकर गुरु शिष्य का हो जाता है । शिष्य पुत्र बन जाये और पुत्र शिष्य बन जाये यह दो अवस्थायें होती हैं अध्यात्म ज्ञान के उत्तराधिकारी होने की । मैंने यह दोनों अवस्थायें देखीं । हम आप सब ने देखा परम पूज्य पंडितजी महाराज गुरु महाराज के शिष्य थे लेकिन क्या रिश्ता था ? केवल पिता पुत्र का । पुरी के मंदिर में गये हुये थे । पुजारी ने पूछा आपका नाम क्या है ? यह है, पिता का नाम ? उन्होंने कहा परम संत डा. चतुर्भुज सहाय । गोत्र ? कायस्थ । अपने को निछावर कर दिया गुरु के चरणों में । गुरु नहीं, मेरे पिता हैं । और दूसरी तरफ हमने देखा परम पूज्य बड़े भइया साहब को जो गुरु महाराज के पुत्र भी थे लेकिन उन्होंने कभी अपने पिता को चाचाजी, पिताजी कह कर सम्बोधन नहीं किया । जब भी कहा गुरु महाराज जी कहा और यह दोनों व्यक्ति गुरु महाराज के उत्तराधिकारी बने । आप आये हमारे बीच, आप बैठते भी रहे, आपका दर्शन भी किया, आपका सानिध्य भी प्राप्त किया लेकिन समझ नहीं पाये आप थे क्या? हमें क्या देना चाहते थे, हम यह नहीं समझ पाये। आप कृपा के सागर हैं हममें न भक्ति है, न वह दृष्टि जिससे आपको पहचान पाते । प्रार्थना यही है जैसे हैं आपके हैं हम पर आप पर, सब पर कृपा बनी रहे , दया करें ।

✦✦✦

प्रवचन–पराग :–

ऐसे गुरु भगवान की जय हो

– परम भागवत परमसंत पं. मिहीलाल जी

प्रत्येक गृहस्थ अपने को ऐसा समझे जैसे सवारियों से भरी हुई नाव ले जाने वाला एक मल्लाह । आपने देखा भी होगा कि जब मल्लाह अपनी नाव खोलता है, तो प्रथम भगवान को प्रणाम करता है, नदी का जल उनके चरणों में डालता है और सब लोगों की तरफ हाथ जोड़कर, बल्ली लेकर खड़ा हो जाता है । यह उसका प्रथम दैनिक काम है । क्या यह सब जो वह करता है एक दिखावा है ? नहीं, नहीं, वह एक बहुत बड़ा काम कर लेता है, प्रभु को प्रणाम से, उनका ध्यान करता है, जल से भगवान को अर्घ्य देता और अन्तर ही अन्तर अपना बल भगवान को सौंप, उनके बल पर चलने को तैयार होता है । यह सब कर लेने से वह अपनी जिम्मेदारी अपने ईश्वर पर डाल देता है । वह जानता है कि मेरा बल केवल एक कहने मात्र है, वास्तव में ईश्वर का बल ही सत्य है और वही पार करने वाला है ।

मनुष्य का बल एक मिट्टी के ढ़ेले को या पत्थर को एक जगह से दूसरी जगह फेंक सकता है परन्तु प्रभु का बल उसे जीवनदान दे सकता है । वह पत्थर उनके स्पर्श से सुन्दर शरीर धारण कर लेता है । अपना बल बस केवल अपने शरीर को साध सकता है, प्रभु का बल इस अनन्त विश्व को धारण कर रहा है । बस, जो अपना बल तजकर प्रभु के बल में मिल जाते हैं, उनका बल भी अतुल हो जाता है, अनन्त हो जाता है । वह अपनी छोटी अंगुली पर एक पर्वत ही नहीं विश्व को धारण कर सकते हैं । विश्व उनके संकेतों पर नाच सकता है । देखा कि सुग्रीव बालि के डर से राजधानी त्याग जंगल के एकान्त में निवास करता था । एक दिन सुग्रीव को राम का दर्शन मिला, उनका बल प्राप्त हुआ, तो वही सुग्रीव बालि को घर से बुलाकर युद्ध करने को तैयार हो गया और उस पर विजय प्राप्त की । प्रभु का बल महान है और वास्तव में वही आत्म–बल है ।

यह तो समझ गये कि यह बल महान है, परन्तु साथ में यह भी समझो कि इसी बल से संसार के सारे बल बलवान होते हैं । जैसे वृक्ष का पृथ्वी एक आधार है, ऐसे ही यह बल सम्पूर्ण बलों का आधार है, इसके बिना कोई ज्ञान की बात नहीं कर सकता, इसके बिना कोई एक शब्द सुन नहीं सकता । इसके बिना एक इंच चल नहीं सकता और इसके बिना कोई कुछ सोच भी नहीं सकता ।

तुम यह भी जानते हो कि यह पृथ्वी अनेक

परमाणुओं का एक समूह है, एक अणु या परमाणु अपने में अनन्त शक्ति भी रखता है । तब फिर सारी पृथ्वी में कितनी शक्ति है । या यों कहें कि पृथ्वी शक्ति ही का एक केन्द्र है कोई अन्तर नहीं । ऐसे ही जीव आत्मा का एक परमाणु समझो, फिर यह अनन्त जीव, ज्ञान शक्ति और धर्म के परमाणु ही तो हैं । अब उस आत्मा को समझो, वह कितनी महान है उसमें कितना ज्ञान है, कितनी शक्ति है । इसलिए जीव जब अपने ऊपर के आवरणों को हटा देता है तो शुद्ध आत्म-स्वरूप हो जाता है और तब वह केवल शक्ति ही हो जाता है ।

भगवान ने तुम्हें नेत्र दिये हैं, जिनसे तुम देखते हो-यह वृक्ष है, पशु है, मानव है परन्तु इनकी शक्ति नहीं देख पाते । इनमें सबमें पूर्ण शक्ति भी है । तुम एक पत्थर की मूर्ति देखते हो, कहते हो, इसमें और कुछ नहीं केवल पत्थर ही पत्थर है । ऐसे ही जिन्होंने अपने शुद्ध नेत्रों से देख पाया है, ज्ञान-चक्षुओं से समझ पाया है, उन्होंने देखा है कि जीव में केवल आत्मा ही आत्मा है , ज्ञान ही ज्ञान है और कुछ है ही नहीं। उनका ऐसा कहना भी है कि यहाँ तुम जो देखते हो, ईश्वर ही ईश्वर है । एक ज्ञानी पुरुष या सन्त जहाँ सबको ईश्वर-स्वरूप देखते हैं, परन्तु वहीं वह पुरुष उस ज्ञानी को केवल एक पंच-तत्व का साधारण मनुष्य देखता है । कितना अन्तर है, कारण कि-एक के वह ज्ञान-चक्षु खुले हुए हैं और एक के बन्द हैं ।

इसलिए साधक ! तुम भी अपने आवरणों को हटाकर आत्म-ज्ञान की स्थिति में आओ और उस शक्ति-रूप परमात्मा में मिलकर शक्ति स्वरूप हो जाओ । फिर ऐसी बात भी नहीं है कि तुम केवल बातों से ऐसे बन जाओ, बातों ही से अपने आवरण हटा लो, इसके लिए कुछ करना पड़ेगा । तुमने देखा है, जब बच्चे बहुत छोटे होते हैं, तो वह कपड़े (वस्त्र) स्वयं नहीं पहनते, माँ पहिनाती है । फिर वह उनको स्वत: उतार भी नहीं सकते, वही माँ उनके सब वस्त्रों को स्वयं उतारती है । कभी-कभी बच्चा वस्त्र नहीं उतारना चाहता, वह उसे सुहा जाते हैं, उन्हें वह पसन्द कर लेता है, एक कष्ट-सा भी अनुभव करता है, तब भी माँ समय पर उन्हें उतार देती है ।

ऐसे ही आत्मा पर जब वह वस्त्र (कोश) चढ़ जाते हैं, जीव इन्हें धारण कर लेता है, तो फिर उन्हें उतारना भी नहीं चाहता । बस, माँ को जब दया आती है उन वस्त्रों से जीव घबरा जाता है तो माँ उतार भी अवश्य देती है । वही तो गुरु हैं । उनसे कहो, प्रार्थना करो कि- हे नाथ । एक बार तो मुझे इन आवरणों से मुक्त कर दो, एक अवसर तो ऐसा हो कि अपने उस सत्य-स्वरूप को देख पाऊँ । कभी यह आवरण समाप्त ही नहीं हुए, एक फटा तुरन्त दूसरा पहिना दिया । एक-दो नहीं लाखों ही वस्त्र पहिने, कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि मैं कुछ देर निरावरण (त्रिगुणातीत) हो जाता ।

इसमें अब माँ का भी दोष नहीं । वह आवरण अथवा वस्त्र मुझे ऐसे पकड़ गये हैं कि मैं उन्हें अब अपनी प्रतिष्ठा और लज्जा ही समझने लगा हूँ । नहाते-धोते सोते-जागते ऐसे बदलता हूँ कि शरीर देख ही नहीं पाता । वह अब मेरी लज्जा बन गये हैं । महात्मा कृष्ण ने देखा कि मेरे प्रिय

शिष्य अभी एक बन्धन में हैं । मुझे सब कुछ मानते हुए भी मुझसे दुराव है, मुझे सब कुछ अर्पण करते हुए भी एक पर्दा है । एक दिन आपने उनके बस्त्रों को चुरा ही लिया । क्या करें, वह उन्हें छोड़ते ही नहीं थे और वस्त्र लेकर ऊँचे पेड़ पर चढ़ गये । अब क्या करें ? स्नान करके तुरन्त वस्त्र चाहिए देखा इधर-उधर बड़ी लज्जा, बड़ी घबराहट कौन ले गया । ऊपर देखा, कदम की डाली पर सब वस्त्रों को लेकर बैठे हैं । अपनी लज्जा, ढकने का पुनः जल में खड़े होकर कहा- हमारे वस्त्र दे दो, हम नग्न हैं, वस्त्र हीन हैं बाहर कैसे आवें ? बोले-जल से बाहर आओ तब देंगे । लाचार अपने हाथों से शरीर ढक कर बाहर आये, नहीं दिये । प्रार्थना की- प्रभु ! हम वस्त्रहीन हैं, नंगे बाहर आना पाप है । कहा-नहीं-नहीं हाथ जोड़ो । यह शरीराध्यास ऐसा ही है । हम मर जायँ, कुछ भी करो, परन्तु जीते जी कैसे नग्न हों । कैसे इन पहिने हुए वस्त्रों को फेंक दें । अज्ञान और ज्ञान का एक बहुत हल्का लगाव बहुत दूर तक जाता है । जब प्रभु ही कृपा करें तभी वह दूर होता है ।

यह अन्तिम ग्रन्थि जीव स्वयं नहीं सुलझा सकता न उसे स्वयं खोल सकता है । मरते-मरते तक यह मेरा, यह मेरा चलता ही जाता है । इसलिए यह अज्ञान छूटेगा नहीं । जब प्रभु (गुरु) से अत्यन्त स्नेह करोगे, तो फिर वह तुम्हारे न चाहते हुए भी ऐसा उपकार तुम्हारे साथ कर देंगे । क्या आश्चर्य नहीं है कि शरीर से भी अधिक मोह हमें शरीर के वस्त्रों से हो गया है ।

इस मोह को प्रभु जभी छुड़ाते हैं, जब साधक (जीव) सब कुछ त्याग कर प्रभु से मिलने को ललचाता है परन्तु नहीं मिल पाता, तो गुरु जान बूझकर इस अन्तिम आवरण को दूर कर अपने में मिला लेते हैं । उनके लिए भले ही एक खिलवाड़ हो, परन्तु जीव को तो महान कष्ट का सामना होता है । कैसे अपने अहं को सौंपे ? अरे यह सौंपते ही तो अपना सब कुछ चला जाता है, कुछ रहता ही नहीं । कितने युगों से कमाया था, कितने युगों से पोषा था, जीव कैसे त्याग दे । परन्तु वह होते हैं, जो प्यार ही प्यार में उसका सब कुछ छीनकर, फिर उसे अपना सब कुछ दे देते हैं । ऐसे गुरु भगवान की जय हो, जय हो। ✦✦✦

विमल-वाणी

- जीवन थोड़ा है अभी तक नहीं सम्भले तो अब समय बरवाद मत करो। अपने उत्थान के प्रयासों में तेजी से लग जाओ।
- हदय जब तक निष्काम नहीं बन जाता तब तक ईश्वर हाथ नहीं आता।
- आत्म दर्शन के लिए मन को अन्तर की तरफ मोड़कर समाधि की अवस्था में जाना होगा।
- मन की विशुद्धि में परम विशुद्धि निहित है। स्व-कल्याण में परम कल्याण निहित है ।

– परम संत श्री डॉ. बृजेन्द्र कुमार जी

सुधा–सार :–

त्रिगुणातीत या जीवन मुक्त अवस्था

– नवनीत हृदय परम संत श्री डा. बृजेन्द्र कुमार जी

साधक को त्रिगुणातीत बनने के लिए भी तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। ये तीन अवस्थायें हैं- एकाग्रता, निरोध व समाधि। समाधि में आत्म ज्ञान की अनुभूति के बाद ही साधक त्रिगुणातीत या जीवन मुक्त कहलाने का अधिकारी बनता है ।

अब सवाल यह है कि त्रिगुणातीत व जीवनमुक्त अवस्था में पहुँचकर साधक में क्या परिवर्तन आ जाते हैं। उसकी हुलिया तो नहीं बदलती, पर उसके दृष्टिकोण, विचार–धारा व व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण जी अर्जुन को विराट स्वरूप का दर्शन करा कर व अत्यन्त गोपनीय ज्ञान देने के बाद पूछते हैं कि हे अर्जुन ! अब अपनी वर्तमान स्थिति का बयान कर ।

जो कुछ अर्जुन ने बतलाया वही जीवन मुक्त के लक्षण हैं। मोह साधक की प्रगति में बाधक होता है। मोह पुत्र, पुत्रियाँ, पत्नि या पारिवारिक जनों का ही नहीं होता, अगर सन्यासी व आचार्यगण अपने–अपने शिष्यों, सत्संगियों या आश्रम के जानवरों तक का मोह करते हैं तो वही बन्धन का कारण बन जाता है। मोह के वश अक्सर लोग सही रास्ते से बहक जाते हैं।

पहली बात तो यह रही कि अर्जुन ने हे कृष्ण, हे यादव या हे सखा कहकर सम्बोधन नहीं किया। अब उसको भगवान के सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापक तथा निर्विकार रूप का पूर्ण ज्ञान हो चुका था, इसलिए पहला परिवर्तन यह आया कि-

(1) उसने भगवान को अच्युत कहकर सम्बोधित किया और बहुत ही विनम्र स्वर में बोला।

(2) दूसरी बात मोह के बारे में अर्जुन ने कही कि महाराज मेरा मोह पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है।

(3) अर्जुन ने स्वीकार किया कि मेरी स्मृति लौट आयी है यानी मैं अब तक अपने असली रूप को भूला हुआ था। अब उसका सही ज्ञान प्राप्त हो गया । मेरे पंच क्लेश नष्ट हो गये हैं।

(4) इस ज्ञान के प्रताप से अब मेरा मन पूर्णतः शान्त है संशय भी समाप्त हो गये।

(5) अब आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, पालन ही नहीं करूँगा, बल्कि मैं तो देख रहा हूँ कि वास्तव में जो कुछ हो रहा है और आगे जो कुछ भी होगा उसको आप ही करने वाले हैं। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। अब मैं पूर्णतः आपकी शरण में हूँ। ऐसा भाव कि मैं तो सिर्फ निमित्त मात्र हूँ, चाहे रण–क्षेत्र में योद्धा हो, या किसी सांसारिक कार्य को करता हो या आध्यात्मिक शिक्षा देने वाला हो, सबके लिए लाभकारी व आवश्यक है ।

हमारी साधना सन्तमत पर आधारित है। इसमें साधक का निज पुरुषार्थ इतना ही है कि गुरु प्राप्त होने पर फिर उसका दामन न छोड़े, उसमें श्रद्धाविश्वास बनाये रक्खे। उसकी आज्ञा का पूर्णतः पालन करता रहे व उसकी कृपा का इन्तजार करता रहे। ऐसे कार्यों से बचने का सदैव प्रयास करता रहे जो गुरु को अप्रिय हों। यही रास्ता हमारे यहाँ का भी है । ✦✦✦

कर्मयोग और हमारी साधना

— श्री यदुवीर प्रसाद

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को विभिन्न प्रकार के योगों का उपदेश दिया । आत्मबोध प्राप्ति के मार्ग में योग का अर्थ है- "भक्त एवं भगवान का मिलन 'जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन,' वास्तव में यही मानव जीवन का उद्देश्य है ।

अब हम थोड़ा विचार करें कि योग की यह अवस्था कर्म द्वारा कैसे प्राप्त हो । संसार कर्म भूमि है, मनुष्य कर्मयोनि में है । शास्त्र बतलाते हैं कि चौरासी लाख योनियों में एक मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है और बाकी जितनी योनियाँ हैं भोगयोनि हैं। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को बतलाते हैं

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ।।

(2/47)

अर्थात् तेरा कर्म करने में ही अधिकार है उसके फलों में कभी नहीं । इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में आसक्ति न हो ।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य को कर्म करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है । मनुष्य अच्छा से अच्छा तथा बुरा से बुरा कर्म कर सकता है । यह भी बताया गया है कि मनुष्य अकर्मन्य नहीं रह सकता उसे कर्म करना अनिवार्य है और किस प्रकार का कर्म करेगा उसे पूर्ण अधिकार है । परन्तु कर्म के फल पर उसका अधिकार कदापि नहीं है । कर्मफल उसके द्वारा किये गये कर्मो के आधार पर प्राप्त होंगे । कर्म की कमाई के द्वारा मनुष्य चाहे तो आवागमन के महान चक्र से छूट सकता है या फिर से मनुष्ययोनि या निचली योनियों में जन्म ले सकता है । भगवान कृष्ण ने गीता में कर्म को तीन श्रेणियों में बाँटा है;

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ।।

(4/17)

अर्थात् कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये, क्योंकि कर्म की गति गहन है ।

उन्होंने कहा कि अर्जुन तुम कर्म, विकर्म और अकर्म का भेद समझो तभी तुम कर्म बन्धन से मुक्त हो सकते हो, क्योंकि कर्म की गति बहुत ही जटिल है । अगले श्लोकों में उन्होंने बताया कि शास्त्र में बताये गये कर्म जैसे धर्मरत रहना, बुरे कर्मों से बचना आदि सभी कर्म की श्रेणी में आते हैं। उन्होंने शास्त्र में बताए गये कर्मों के विरुद्ध कर्म को 'विकर्म' कहा । ये दोनों ही कर्म बन्धन में डालते हैं, कहा जाय तो एक सोने की कड़ी है तो दूसरा काँटों का हार । उन्होंने 'अकर्म' उन कर्मों को बताया जो शास्त्रोक्त हों और साथ-साथ उन्हें करने में मनुष्य चार भावों से मुक्त हो, वे भाव हैं फल की इच्छा, आसक्ति मोह और अहंकार। इन चार भावों से मुक्त शास्त्रोक्त कर्म ही **'अकर्म'** कहलाता है । **'अकर्म'** ही कर्म की वह श्रेणी है जो कर्म बन्धन में नहीं डालता ।

अब हम सब यह विचार करें कि हम जीवन में बराबर ऐसे कर्म करते जायं जो शास्त्रोक्त हों

और जो कर्म बन्धन में नहीं डालते हों परन्तु इस जन्म के अलावे पूर्व जन्मों के कर्म भी तो हमारे सर पर गठरी की बोझ हैं । इन्हीं गठरियों के बोझ से मुक्ति प्राप्त कर **'अकर्म'** की अवस्था में आकर आवागमन के चक्र से छुटकारा पाना मानव जीवन का उद्देश्य है । शास्त्र बतलाता है;

तत कर्म यन बन्धाय ।
सा विद्या या विमुक्तये ।।

तात्पर्य यह है कि कर्म ऐसा हो जो मनुष्य को बन्धन में न डाले और विद्या ऐसी हो जो बन्धन से मुक्त करे । हमारे समर्थ गुरु ने सरलतम साधना मानव मात्र के कल्याण के लिए संसार को प्रदान किया जिसे निश्चल भाव और दृढ़ संकल्प के साथ अपनाने से गीता में वर्णित 'अकर्म' की अवस्था प्राप्त होगी । परम पूज्य गुरुमहाराज जी द्वारा प्रतिपादित इस साधना को हम हृदय से लगाकर चलेंगे तो हमारे संस्कारों का मार्जन होता जायेगा और धीरे-धीरे हम उस मार्ग पर अग्रसर होते जायेंगे जो हमें **'अकर्म'** की स्थिति में लाता है और मुक्ति प्रदान करता है ।

भगवान शंकर माता पार्वती को बतलाते हैं, जो स्कन्ध पुराण में आया है;

न सुखं वेद शास्त्रेषु, न सुखं मंत्र यंत्र के ।
गुरोः प्रसादाद अन्यत्र सुखं नाशित महितले ।।

अर्थात् हे देवी वेद शास्त्र में सुख नहीं है मंत्र यंत्र में सुख नहीं है, जो सुख गुरु के कृपा छत्र में है वह सुख सारे भूमंडल में नहीं है ।

ऐसे ही समर्थ गुरु की कृपा के साये में हम सभी हैं । मानव जीवन कर्मयोनि है और संसार कर्म भूमि है इसलिए गुरु के बताये मार्ग पर श्रद्धा और विश्वास के साथ चलने से हम **'अकर्म'** की स्थिति को प्राप्त कर अन्तिम अवस्था में परम पूज्य गुरुदेव के चरणों तक पहुँच सकेंगे ।

परम पूज्य गुरुमहाराज के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम और प्रार्थना है कि हम सबों को बल, बुद्धि और विवेक प्रदान करें जिससे हम अन्तिम समय उनके चरणों तक पहुँच सकें ।

✦✦✦

प्रेरक प्रसंग :-

वर सुनकर प्रसन्न हो गए गुरु जी

भारतीय धर्मग्रंथों में कई ऐसे प्रसंग हैं, जिसमें प्रभु भी भक्त के मुंह से वर सुनकर हर्षित हो उठे। इसी से जुड़ा एक प्रसंग गुरु गोविन्द सिंह से संबंधित है। भाई रूपा गुरु जी का परम भक्त था। वह उनकी सेवा-सहायता के लिए हर क्षण तत्पर रहा करता था। एक दिन गुरु जी ने उसकी निष्काम सेवाओं से प्रसन्न होकर कोई वर मांगने को कहा।

रूपा ने कहा, गुरु जी, मैं आज नहीं, कल आपसे कोई वर मांगूँगा। मैं अपने मित्रों और परिवार के लोगों से क्या वर मांगू, इस विषय पर विचार करना चाहता हूँ । मुझे आज का वक्त दे दें। रूपा ने अपने मित्रों से पूछा कि गुरु जी से क्या मांगू। उन्होंने कोई कीमती सांसारिक वस्तु मांगने का सुझाव दिया। रूपा की पुत्री भगवान की परम भक्त विदुषी महिला थी। रूपा ने उससे पूछा, गुरु जी से क्या मांगू? पुत्री ने कहा, पिताजी, यदि गुरु महाराज से कुछ मांगना है तो मांगना-सब ही सेवा में बन आवै। हम ते दुःखी न कोई जावै।। अर्थात् हम हर क्षण सेवा में लगे रहें। हमारे यहां आने वाला दुःखी और निराश न लौटे। रूपा ने दूसरे दिन जब गुरु जी से उपरोक्त वर मांगा, तो वह उसकी उच्च भावना को देखकर गद्गद हो उठे तथा कहा, तुम हर क्षण सेवा में लगे रहोगे।

शरणागत दीन पुकार करे ...

— डा. श्याम सुन्दर सौनकिया

जड़-चेतन गुरुमय देख सकूँ, नयनों में ऐसी शक्ति कहाँ ।
पल भर को भी विस्मरण न हो, उर में ऐसी अनुरक्ति कहाँ ।।

अति सघन आपदायें जग की,
अन्तर्मन क्लेशातुर करतीं ।
भीषण परिवेश, विषमतायें,
विषमयी व्यथा वितरित करतीं ।।

पुष्पित हो गुरु-पद-कमल हृदय-सागर में, ऐसी भक्ति कहाँ ।।
पल भर को भी विस्मरण......

कुंठित है शब्दलोक, वाणी-
अवरुद्ध, कहाँ से यश गाऊँ ।
अर्चन-वंदन मन विमुख, प्रेम
रस पान कहाँ से कर पाऊँ ।।

अनवरत ध्यान में डूब सकूँ, उर में ऐसी आसक्ति कहाँ ।।
पल भर को भी विस्मरण......

नाते-रिश्ते धन-मान-अहम्,
की चाह उमंग भरे तन में ।
है लाभ-लोभ की लगन अमित
अभिलाषायें अन्तर्मन में ।।

तृणवत् त्यागूँ जग आकर्षण पलभर में, परम विरक्ति कहाँ ।।
पल भर को भी विस्मरण......

शरणागत दीन पुकार करे,
हे नाथ शरण में ले लीजे ।
हूँ पतित, पतित पावन तुम हो,
करुणा करके करुणा कीजे ।।

नयनाश्रु निवेदित चरणों में वाणी में वह अभिव्यक्ति कहाँ ।।
पल भर को भी विस्मरण.......

अवतरण–पर्व पर :–

"संभवामि दिने–दिने"

– श्री मथुरा प्रसाद सिंह

[3 नवम्बर, हमारे श्री गुरु महाराज समर्थ गुरु परमसंत डा. चतुर्भुज सहाय जी का अवतरण पर्व, उनकी याद में......सं.]

देवासुर संग्राम कहें या सद्–असद् वृत्तियों का संघर्ष यह कल भी था, आज भी है और आने वाले समय में भी रहेगा । दोनों सनातन हैं और समवयस्क भी । प्रत्येक जीव भीतर और बाहर से इनके जेरे असर है । हमारे सद्ग्रंथ कहते हैं कि जगत निर्माता ने जगत का निर्माण ही 'विधि प्रपंच गुन अवगुन साना।'' के साथ किया । वही पुरातन पुरुष का पुराना नुस्खा आज तक चला आ रहा है । यही कारण है कि यह द्वन्द्वात्मक संसार गुल व खार के साथ चलता आ रहा है और चलता रहेगा । दोनों की अपनी अहमियत है । एक शायर कहता है– ''पहलु में गुल के खार भी हैं बेसबब नहिं, मानो हुस्न तोलने का है कांटा लगा हुआ ।''

हम जीवों के लिए एक सुखद संदेश भी है । जब–जब और जहां–जहां कांटों की चुभन बढ़ेगी, अच्छाई–बुराई का संतुलन बिगड़ेगा, असद् जब सद् पर भारी पड़ने लगेगा । पुरातन पुरुष ने घोषणा कर रखी है– ''संभवामि युगे–युगे'' । धार्मिक इतिहास पुराण प्रमाण हैं कि वह आवश्यकतानुसार जलचर, थलचर, अर्द्ध मानव, अविकसित मानव, अर्द्धनारीश्वर, पूर्ण पुरुष और सर्वेश्वरी माता के रूप में भी आता है । जिस दिन उसने ''एकोहं बहुस्यामि'' का मन बनाया था उसी दिन उसने नरलीला करने का भी शिव संकल्प लिया था ।

परमात्मा के घोषित कोमल, कठोर अवतरण के अलावा एक अघोषित अवतरण भी होता है । वात्सल्य, करुणा और मातृ हृदय लिए वह संत सद्गुरु के रूप में ''दिने–दिने'' भी आता है । जन मानस में दोनों रूपों की समान प्रतिष्ठा है । कुछ तो गोविन्द से गुरु का पलड़ा झुका हुआ मानते हैं । परमात्म अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण ने भी संत स्वरूप की महिमा बढ़–चढ़ करके की है । तत्वतः दोनों एक हैं, दोनों का लक्ष्य भी एक है । वास्तव में परमात्मा ही संत की देह में छुपकर पैदा होता है । परमात्म अवतार और संत अवतार में सबसे बड़ी समानता पहचान के संकट की है । दुनियां के बहुत कम लोग उन्हें पहचान पाते हैं । भिन्न–भिन्न स्थिति होते हुए भी आगमन और कार्य शैली में थोड़ा अन्तर दिखता है ।

परमात्म अवतार शिव होते हुए भी जीव की तरह जीता है । संत अवतार जीव होते हुए शिव का व्यवहार करता है । प्रथम किसी युग विशेष

की प्रतीक्षा करता है । दूसरा भटकती मानवता की पीड़ा से द्रवित होकर बिना तिथि-वार का विचार किए ही आ जाता है । अतिथि शब्द शायद संतों के लिए ही व्यवहार में आया था । प्रथम नारायणी रूप में प्रकट होकर पुनः लीलावपु धारण करता है । दूसरा सामान्य बालक की तरह आकर अलौकिक छवि प्राप्त करता है । अजीवो-गरीब है संतों के आगमन की कथा, कोई राज घराने (बुद्ध) में, कोई सम्पन्न परिवार (धर्मदास) में, कोई दीन-हीन उपेक्षित परिवार (रैदास) में, कोई अवैध संबंधों की संतति के रूप (कबीर) में और कोई अशुभ मुहूर्त (तुलसी) में भी आता है । परिवार से तिरष्कृत, समाज से वहिष्कृत या राजघराने में पालित हो इन्हें कोई पीड़ा नहीं । कुछ को माँ की कोख मिलती है तो गोद नहीं । कोई अनाम निरू और पुनिया इन्हें छाती से लगा लेती है, ममता के आंचल में ढक लेती है । अनायास कोई नरहरि, कोई रामानंद इन्हें संस्कारित करते हैं । अपनी वंश परंपरा से अनजान समाज की उपेक्षा से चोटिल ये पलते रहे हैं, बढ़ते रहे हैं । गोस्वामी जी ठीक ही कहते हैं ''उपजहि अनत अनत छवि लहहीं'' । ये राजघराने की शोभा बढ़ाए हों या झोपड़ी में किलकारी भरे हों, इन्हें फकीरी ही रास आती है । बुद्ध कहते हैं-

''छोड़ा मैंने सब राजपाट,
अब घुमु घर-घर घाट-घाट ।
दूँ सुगत गिरा का दिव्य दाय,
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ।''

इन्हीं ''संभवामि दिने-दिने'' की श्रृंखला में श्री गुरु महाराज का शुभागमन एक सम्पन्न और धार्मिक परिवार में तीन नवम्बर अठारह सौ तेरासी को हुआ । इनका बाल और युवा जीवन कैसे गुजरा, इसकी विस्तृत जानकारी श्री गुरु महाराज ने दी है । पाठक इसे भली-भाँति जानते हैं । इलाके में अचानक फैले प्लेग की महामारी ने उन्हें स्वर्णिम अवसर प्रदान किया, अपने सद्गुरु के साथ रहने का मौका दिया । प. पू. दादा गुरु को सत्पात्र मिला और अज्ञात रूप से शक्तिपात की वर्षा होने लगी जो मुकम्मिल होने तक चलती रही । रामाश्रम सत्संग का जो विराट स्वरूप हमारे सामने है, उसे पल्लवित पुष्पित करने में श्री गुरु महाराज ने क्या किया यह भी सर्व विदित है । फिर भी कुछ विशेष तथ्यों के वर्णन करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता ।

निश्चय ही हमारे श्री गुरु महाराज बहुत खास थे । खासियत उनके व्यक्तित्व में, कर्त्तव्य में और चुम्बकत्व में थी । जो एक बार आया उन्हीं का होकर रह गया । निष्काम सेवा, त्याग और प्रेम की त्रिवेणी कहीं और नहीं मिलती । गुरु मिशन का जुनून भी कुछ खास था । उनके लिए गुरु ही सब कुछ थे । गुरु का काम, उन्हीं का ध्यान और उन्हीं का नाम-यही सब कुछ था । गुरु मिशन की उत्तरोतर वृद्धि के लिये रूहानी इल्म की लक्ष्मण रेखा'' सार बात बाहर नहीं जाई'' को तोड़ देने में भी उन्हें कोई संकोच नहीं हुआ । उन्हीं की उदार और दूर दृष्टि से यह खास विद्या आम लोगों के लिए सुलभ हो गई ।

अपना नश्वर स्थूल त्यागने के पूर्व ही श्री गुरु महाराज ने अमर शरीर की रचना की । उनका विशाल शब्द शरीर 'साधना के अनुभव' अनुभूत साधनाओं का संग्रह 'रामाश्रम सत्संग' का ''गुरु ग्रंथ साहिब'' है । सामान्य समझ में यह संग्रहित अनुभव बाद के साधकों की जानकारी के लिए है । ऐसी समझ उनके पावन शब्द शरीर का

आंशिक मूल्यांकन कहा जायगा । उनके अनुभूत साधनाओं के संग्रह में तो पाठक स्वयं को पढ़ सकता है और अपने को माप सकता है कि साधना के किस पायदान पर वह खड़ा है । निश्चय ही हमारे श्री गुरु महाराज पूरी तरह से खास थे, इसीलिए उनकी दी हुई साधना अन्य साधनाओं की भीड़ से कुछ अलग है ।

एक बार श्री गुरु महाराज से ही किसी ने पूछ लिया था- आखिर रामाश्रम सत्संग ही क्यों । श्री मुख से उत्तर आया था कि सभी सत्संग अच्छे हैं । अन्य सत्संगों में गुरु मार्गदर्शन तो करते हैं पर ऊपर की चढ़ाई साधकों के प्रयत्न पर छोड़ दी जाती है । हमारे यहाँ साधकों के प्रयत्न के साथ-साथ गुरु अपनी आन्तरिक ऊर्जा से उन्हें ऊपर खींचता है और टिकाए रखता है । इसे शक्तिपात कहते हैं । यह ज्ञात भी होता है और अज्ञात भी, निकट से भी होता है और दूर से भी। हमारे सिलसिले के सभी सद्‌गुरुओं में हाजिराना या गायबाना तवज्जह देने की सामर्थ थी । स्वयं महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज प. पू. दादा गुरु जी इसी शक्ति के कायल थे । श्री गुरु महाराज में भी यह समर्थ थी । तब साधकों की संख्या कम थी तो रूबरू बैठाकर ही साधना में प्रवेश दिया जाता था । आज हमारी संख्या बढ़ती जा रही है तो श्री गुरु महाराज भी चराचर में व्याप्त होकर अपनी उसी शक्ति से, प्रेम की उसी डोर से बांधे हुए हैं । उनकी कशिश आज भी बरकरार है ।

बुद्ध ने एक बार अपने भिक्षुओं से कहा था- लोग चार प्रकार के होते हैं । पहला अंधकार से घोर अंधकार की ओर जाने वाले और दूसरे प्रकाश से अंधकार की ओर जाने वाले और तीसरे अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाले और चौथे प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाले। हमारी साधना का श्री गणेश ही परमात्मा के प्रकाश से होता है और उसी में लय होता है । हमें समर्थ गुरु परंपरा, विपुल साधना-साहित्य, अनवरत सत्संग और ''जाके सिर समरथ गुरु'' प्राप्त हैं । हम चौथी श्रेणी में आते हैं । श्री गुरु महाराज हम पर दया करें । अपना प्रेम प्रकाश प्रदान करें । ✦✦✦

मथुरा भण्डारा

दिनांक 15, 16 एवं 17 फरवरी 2015 को होना निश्चित हुआ है।

विष पान

— श्री उदय नारायण सिंह

कहा जाता है कि समुद्र मंथन के समय जब क्षीर सिंधु से विष उत्पन्न हुआ तो उसकी ज्वाला से संसार जलने लगा । कोई भी देव या दानव उसे लेने या ज्वाला को शान्त करने की हिम्मत न जुटा सका । तब सबने मिलकर भगवान शिव से प्रार्थना की कि आप ही इस ज्वाला से संसार की रक्षा कर सकते हैं हममें से कोई भी यह काम नहीं कर सकता । तब भगवान शिव ने सृष्टि की रक्षा हेतु उस विष को पी लिया । उन्होंने सृष्टि की रक्षा की । इसलिये उन्हें शिव कहते हैं। महादेव कहते हैं शिव का अर्थ है - मंगल करने वाला । उन्हें जगद् गुरु भी कहा जाता है ।

सद्‌गुरु संसार के कल्याण हेतु समय-समय पर इस धरा धाम पर आते रहते हैं । संसार में जो काम-क्रोध, लोभ, मोह, राग-द्वेषादि का विष है, जिसकी ज्वाला से सारे प्राणी जल रहे हैं, कष्ट झेल रहे हैं उसे वह पीकर सबको सुखी करते हैं । सबके सुख के लिये वह विष पान करते हैं । वह अपने लिये नहीं जीते, दीन-दुःखी प्राणियों के लिये जीते हैं । संसार में जो प्राणी आते हैं वे अपने अच्छे-बुरे संस्कार लिये आते हैं, कुछ संस्कार यहाँ भी अर्जित करते हैं । उन्हीं संस्कारों को भी भोगते हुए जन्म-दर-जन्म भटकते रहते हैं । गुरु जो आत्मज्ञान देते हैं, उससे वे संस्कार क्षय होते हैं, कुछ भोगकर पूरे होते हैं, और कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें सद्‌गुरु अपने ऊपर लेकर भोग कर समाप्त करते हैं। इसीलिये जो भी आदमी उनका दामन पकड़ता है, पूर्ण श्रद्धा और विश्वास पूर्वक उनकी आज्ञा में चलता है, उसकी मुक्ति में कोई संदेह नहीं रहता। कहा भी गया है- मोक्ष मूलं गुरु कृपा ।

गुरु महाराज का अपना अनुभव है, वह लिखते हैं कि गुरु बनना कोई बड़प्पन का काम नहीं है । यह बहुत नीच काम है । इसमें बहुत कुछ सहना पड़ता है, गंदगी धोनी पड़ती है, लोगों के बुरे संस्कारों को भोगना पड़ता है । संतजन कहते हैं कि गुरु का काम एक धोबी का काम है जो सबके मैले-कुचैले कपड़े बटोर कर लाता है, उन्हें मसल-मसलकर, पीट-पीट कर साफ करता है, फिर सबके पास पहुँचाता है । यह कोई आराम या सम्मान का काम नहीं है, बल्कि सफाई करने वाले का काम है, कठिन त्याग और सेवा का काम है । जो सेवक बनना चाहें, त्याग करना चाहें, उनके ही लिये यह काम है । मगर इसके विपरीत कुछ लोग अपने मान-सम्मान के लिये, सेवा लेने के लिये चरण पुजवाने और चढ़ावे तथा नाम-यश के लिये गुरु बनने को बड़े उतावले रहते हैं । गुरुदेव कहते हैं कि गुरु बनना इतना

आसान काम नहीं, बहुत कठिन काम है । लोग साधना नहीं करते, शक्ति अर्जित नहीं करते, ज्ञान नहीं रखते, बस दिखावे के लिये वेष बनाते हैं, झूठ-सच बातें बनाकर भोले-भाले लोगों को फाँसते रहते हैं । "अपना घर पानी नहीं औरन बखसत खीर" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं । इसमें गुरु और शिष्य दोनों ही कष्टमय लोकों को प्राप्त होते हैं । मगर जो सच्चे गुरु होते हैं, उनमें अपार आत्मिक शक्ति होती है । वे किसी को पल मात्र में भी इस शक्ति से भर सकते हैं । उनका जीवन कठिन तप, त्याग और बलिदान का होता है । वे हँसते-हँसते विष का प्याला पी जाते हैं, शूली पर लटक जाते हैं, घोर यातना और अपमान का जहर पीकर भी प्रसन्न रहते हैं । उनका जीवन यज्ञाग्नि के समान पवित्र होता है जो दूसरों के हित के लिये जलता रहता है । वे कठिन दंश झेलते हैं, मगर उन्हें उसी में सुख मिलता है ।

इससे भी असह्य वेदना तब होती है, जब गुरु के भक्त कहे जाने वाले प्रेमी जन अपने गलत आचरण से उनका दिल जलाते रहते हैं । यह कितनी दयनीय दशा है कि जिन प्रेमी जनों के लिये वह जान की बाजी लगाये बैठे हैं, वही भक्त गण उन्हें विष का प्याला थमा रहे हैं । जो उपदेश वह करते हैं, जो आज्ञा वह देते हैं, उस पर चलना, उसके अनुसार जीवन बनाना हमारा परम कर्त्तव्य है, परमधर्म है । मगर देखा जाता है कि उनके कुछ पक्के भक्त भी उनकी आज्ञा की अवहेलना करते हैं । उनके बार-बार मना करने पर भी वे अपनी दिशा नहीं बदलते और उनकी अवमानना करते रहते हैं । यह शर्म की बात है । गुरु यह सब देखते सहते हुए, विष का प्याला पीते हुए चुपचाप उनके कल्याण के लिये दिन रात प्रार्थना करते रहते हैं। शूली पर चढ़े हुए महात्मा ईसामसीह ने, विष का प्याला पीते हुए महात्मा सुकरात ने और गोली खाकर धरती पर गिरे महात्मा गाँधी ने एक ही बात कही थी कि "परमात्मा इन्हें माफ कर देना क्योंकि यह अनजान हैं। ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं?" सद्गुरु अन्तर्यामी होते हैं । हमारे अन्दर के भाव भी वे खूब अच्छी तरह जानते हैं फिर भी वे सब कुछ सहते हुए हमसे कुछ नहीं कहते बस इशारा भर करते हैं कि भाई ! ऐसा करना ठीक नहीं है । मगर कभी-कभी जब दर्द असह्य हो जाता है तब कुछ हल्का होने के लिये निःस्वाँस भरते हैं- परमात्मा इन पर दया करना।

पूज्य पंड़ित जी महाराज को हमने खूब मान सम्मान दिया, उन्हें गुरु माना, देवता माना, उनकी पूजा-आरती की, मगर वे हमारे दोहरे आचरण से कितने निराश थे, कितने दुःखी थे, यह पता चलता है उनके इस आहत उद्गार से कि "अब सत्संगी कहाँ हैं?" पूज्य बड़े भैया जी को हमने गुरु का आदर मान दिया, ईश्वर का दर्जा दिया, दिखावा खूब किया मगर उनकी बात एक न मानी । वे कहते रहे दिखावा मत करो, गुरु महाराज की आज्ञाओं के अनुसार जीवन बनाओ, अपना आचरण पवित्र बनाओ, आचार्यगण बार-बार एक ही जगह न जायें, सत्संग को अपनी जागीर न बनायें । सत्संग गुरु महाराज का है, सच्चे दिल से इसकी सेवा करें । मगर हम अपना मनमुखी आचरण करते रहे । इस पर उनकी आहत आवाज थी- "अंग्रेजी हुकूमत की विरासत में मिली हुयी हिपोक्रेसी और ब्यूरोक्रेसी की बीमारियाँ लगता है कि हमारे सत्संग में भी आ

रही हैं । सत्संगियों में पाखण्ड, आचार्यों में अफसर शाही पनपने लगी है । यह चिंता का विषय है । अगर गुरु महाराज के मिशन की सच्ची सेवा करनी है तो सत्संग को इन प्राण घातक कीटाणुओं से बचाना होगा ।'' काश ! हम उन परम संत सद्‌गुरु का दर्द समझपाते और उनकी आज्ञा में चल पाते ।

युग पुरुष, परमसंत परम पूज्य मझले भैया जी जो कल तक हमारे साथ थे, वे भी हमसे बहुत खुश नहीं थे बल्कि बहुत निराश थे । उन्होंने हमें बार-बार चेताया और समझाया कि अपना आचरण पवित्र बनाओ । आपका कहना था- ''यह मंच गुरु महाराज का है, इसकी गरिमा कायम रखने के लिए हर मौजू तरीके को अपनाना चाहिये । गलत अन्न खाने से, गलत पैसा मिलने से, गलत व्यवहार से हमारे चरित्र में कोई कमी आ जाती है तो हम लोगों की साधना में नुकसान होता है । इसके लिये हमें गुरु से भीख मांगनी चाहिये बजाय इसके कि हम मंच पर विराजमान रहें और जो हो उसे होने दें । मेरी प्रार्थना है कि हम इंसान हैं, हममें कमियाँ हैं, सभी ऐतिहात बरतने चाहिये । हमारे अन्दर जो भी कमी आ जाय उसे हमें फौरन दूर करना चाहिये ।'' आप कहते थे कि ''दादा गुरु जब किसी को तालीम देने की आज्ञा देते थे तो एक बात जरूर कहते थे कि एक स्त्री को अकेले में क्रिया मत बताओ उसकी सास, उसके पति को या किसी साधक को जरूर साथ बिठा लो ।

अब देखने में आता है कि लोग सेवा लेने में बिल्कुल परहेज नहीं करते । दादा गुरु व गुरु महाराज ने किसी प्रकार की सेवा लेने से वर्जित कर रखा है । हमने गुरु महाराज को अपने जीवन में कभी सेवा लेते नहीं देखा । बड़े भैया व पंडित जी को मैंने कभी नहीं देखा कि किसी से सेवा ली हो । इससे उस आदमी के संस्कार अपने ऊपर आ जाते हैं । दूसरे उसके ऋणी हो जाते हैं ।''

वे मंच पर उपदेशकों की भीड़ देखना पंसद नहीं करते थे । वह चाहते थे कि आचार्यगण साधकों के बीच में पंडाल में अलग-अलग बैठें, इससे ध्यान भी अच्छा होगा, साधकों पर प्रभाव अच्छा पड़ेगा, और मंच की गरिमा भी बढ़ेगी मगर हमने इस आज्ञा का पालन नहीं किया । उन्हें पता लगा कि एक जगह सत्तरह आचार्य पधारे थे, उन्होंने कहा- ''वहाँ सत्तरह आचार्य आए थे, आठ दश आचार्य स्टेज के सामने कुर्सियों पर बैठे थे । भाई यह बात ठीक नहीं ।'' आपका कहना था कि ''भंडारा का मेरा कन्सेप्ट (concept) यह है कि ज्यादा से ज्यादा साधक साधन और केन्द्र से जुड़ें प्रवचन कर्त्ताओं की कतार खड़ी करना भण्डारा का उद्देश्य नहीं है । उससे आयोजकों पर भी अनावश्यक खर्च का भार पड़ता है ।''

आपने अपना कटु अनुभव सुनाते हुए कहा-जब मैं कभी अवकाश के क्षणों में सत्संग के बारे में सोचता हूँ तो एक अजीब माहौल पाता हूँ । ऐसा लगता है जैसे आजकल सत्संग मखौल हो गया ।

आज की स्थिति यह है कि आज जिसे अभी इजाजत दी है, वह भी अपने को आचार्य कहलाने लगा। यह सब गलत है, यह मखौल है । अपनी पोजीशन, अपनी हैसियत समझनी चाहिये और

इस चीज को अपने दिमाग से निकाल देना चाहिये कि हम आचार्य हैं । वास्तव में आचार्य तो वह है जो गुरुशक्ति को अपने में भर सके और साधकों तक पहुँचा सके और उसके अन्तर में पहुँचा सके। हमने तो अपने को न कभी आचार्य समझा, न कभी अपने को गुरु समझा बैठ जरूर जाते हैं, लेकिन हम अपने को इस काबिल नहीं समझते हैं।''

''आजकल स्वयंभू आचार्यों की बाढ़ आ गयी है । हमारे जो शिक्षक हैं कुछ आचार्य भी हैं जो अपनी प्रतिष्ठा और अपना यश बढ़ाने के लिये ऐसे लोगों को सहायता भी देते हैं । यह गलत है । मुझको ऐसा मालूम पड़ता है कि कुछ साधकों में विवेक दृष्टि आ गयी है और उन्होंने यह भी जान लिया है कि विवेक शक्ति अभी मुझको प्राप्त नहीं हुयी है । उनके पत्र आने लगे हैं कि फलाँ जगह, फलाँ को शिक्षा की आज्ञा दे दो । अगर उनको वह दृष्टि प्राप्त है और वह यह पता लगा सकते हैं कि किसको कहाँ शिक्षा की आज्ञा देनी है तो वह स्वयं इस शुभ काम को कर लें । मैं तो इस काबिल नहीं हूँ । मैं उनसे माफी मांगना चाहूँगा कि मैं उनकी उदूली कर रहा हूँ ।''

यह है उनकी पीड़ा और वेदना जो उनके ही शब्दों में चित्रित है, जो हमें झकझोर कर रख देती है । काश ! हम उनकी इस वेदना को अनुभव कर पाते और अपनी उन गलतियों को जो हम जान-बूझकर करते रहे हैं, सुधार पाते तो उन्हें बहुत कुछ राहत व प्रसन्नता दे सकते थे । यह उनकी देन है कि हमारे बीच पिता-पुत्र का नाता है, भाई-भाई का रिश्ता है, इसीलिये अभी तक हम टिक पाये हैं, यदि गुरु -शिष्य का रिश्ता रहता तो स्थिति कुछ और ही होती । यह कितनी कृपा है कि इतनी धृष्टता पर भी वह हम पर प्यार लुटाये जा रहे हैं । श्रीगुरु कृपा ।

✦✦✦

पावन-पीयुष

- ध्यान इसलिए किया जाता है कि प्रभु या गुरु की साकार मूर्ति दूर होने पर भी पास रहे और साधक उपासना-लाभ उठा सके ।
- संसार को आश्चर्य कहा जाता है । जो देखा जा रहा है वह आश्चर्य है । जो देखने वाला है वह भी आश्चर्य है और सबसे आश्चर्य है कि मिट्टी बोलती है, मिट्टी चलती है, कार्य करती है, यह सब आश्चर्य नहीं तो क्या है ?
- जब मनुष्य थक कर बैठ जाता है अपने को असमर्थ पाता है, प्रभु उसकी सहायता करते हैं, लेकिन जब तक अहं का सहारा लेकर चलता रहता है, प्रभु उससे दूर रहते हैं ।

-परम भागवत परम संत पं. मिहीलाल जी

बिनु गुण कीते भगति न होई

— श्री गोपाल कृष्ण रंजन

आन्तरिक भक्ति का स्वरूप गुणविषयक है । भगवान श्रीकृष्ण भी श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के बारहवें अध्याय में भक्तों के लक्षण गुणों के रूप में ही गिनाते हैं । जिस भक्ति में गुणों का विकास न हो उसका कोई अर्थ नहीं । भक्ति अर्थात् सद्‌गुणों का विकास ।

ईश्वर अनन्त गुणों का भंडार है । हम जितना भी गिनाते जाएँ, इन गुणों का अंत नहीं मिलता । दूसरे शब्दों में कहें तो सभी गुणों की परिपूर्णता ही ईश्वर है । परमेश्वर परिशुद्ध निर्गुण है अर्थात् अनन्त गुणवान है । उपासक अपनी रुचि अनुसार किसी गुण को पकड़ता है और उस गुण को अनन्त गुणवान ईश्वर पर प्रत्यारोपित कर उसकी उपासना करता है । इस गुणमय ईश्वर की उपासना का अर्थ है कि हम इन गुणों को अंशा-अंशी रूप में अपने अंदर धारण करें । जितने अंश में ईश्वर के ये गुण हमारे अंदर उतरेंगे उतना ही हम ईश्वर के निकट होते जाएँगे । जैसा कि हमारे गुरुजन बताते हैं सम गुणों का ही मेल संभव है, जब तक गुणों में विषमता रहेगी मिलन असम्भव है । तो यदि परमात्मा को जानना है उसका साक्षात्कार करना है तो हमारे अंदर परमात्मा के गुणों का विकास अनिवार्य है । जैसा ईश्वर परम प्रेमस्वरूप, परम निर्मल है, वैसा हमें बनना होगा ।

श्री गुरुनानक जी भी कहते हैं- 'बिनु गुण कीते भगति न होई' गुण प्राप्त किए बिना भक्ति नहीं होती। बाह्य आडंबर कितना ही भव्य हो पर भक्ति तो सच्चे अर्थों में गुणों का आन्तरिक विकास ही है । यही हमारी उपासना की कसौटी भी है । जितना गुणों का विकास हुआ, उपासना उतनी ही श्रेष्ठ कही जाएगी।

सच्चा भक्त गुणों के प्रति सदा सजग रहता है, उन्हें देखता है और सतत अपने अंदर उभारने को प्रयत्नशील रहता है । संत माधवदेव ने मनुष्यों की चार श्रेणियाँ बनाई- (1)अधम (2) मध्यम (3) उत्तम और (4) उत्तमोत्तम । अधम मनुष्य को केवल दोष ही दोष दिखाई देता है । श्रेष्ठ से श्रेष्ठ में भी वह कुछ न कुछ दोष ढूँढ़ ही निकालता है । वह दोषों की तरफ अनायास ही खिंचा चला जाता है और इसमें उसे बड़ा रस भी आता है । दूसरी श्रेणी के मनुष्य गुण और दोष दोनों देखते हैं । उत्तम मनुष्य केवल गुणों को ही देखता है । ऐसे मनुष्यों के सम्पर्क में आकर हममें भी धनात्मक (positive) परिवर्तन आता है । इन तीनों श्रेणियों से भी जो उत्तम मनुष्य हैं वे अल्प और न्यून गुणों को भी विस्तारित करके देखते हैं। ऐसा करने से विश्व मैत्री सधती है । पूरी दुनिया से उन्हें मैत्री होती है और ऐसे शीतल हृदय वाले उत्तमोत्तम मनुष्य को ही हम संत कहते हैं ।

परमात्मा ने इस संसार के सभी जीवों, मनुष्यों में सबमें कोई न कोई गुण दे रखा है । सबको गुण बाँटे हैं । इन गुणों को पहचानना, अपने अंदर

धारण करना और उनका संवर्धन करना ही ईश्वर की भक्ति है । दोषों का जहाँ तक दर्शन हो वहाँ माया का ही पसारा समझना चाहिए । विशुद्ध और निर्मल आत्मा का दर्शन करना हो तो दोषों के इन मायावी आवरणों को तार-तार करना ही होगा । जैसे चींटी रेत और शक्कर के मिश्रण से शक्कर के कण चुन लेती है वैसे ही जहाँ गुण दिखे उसे ग्रहण कर लेना चाहिए । हरएक गुणके ग्रहण करने से ही हमारा हृदय गुणों का भंडार बनेगा जिसमें हमें परमात्मा का परिपूर्ण दर्शन होगा । आचार्य विनोबा भावे कहते हैं सतत गुण खींचते जाना, गुणवर्धन करना, गुणस्मरण करना, गुणभावन करना मनुष्य की उन्नति के लिए सर्वोत्तम उपाय है । जैसे कोई चुम्बक जमीन पर पड़े भिन्न-भिन्न कणों में से लोहे के कणों को अपनी ओर खींच लेता है, भक्ति के लिए भी हमारे अंदर गुण-चुम्बक वृत्ति होनी चाहिए । यदि हमें किसी में कोई गुण न दिखे तो इसका अर्थ यही निकालना चाहिए कि हम पहली या दूसरी श्रेणी के ही मनुष्य हैं, हमारे अंदर भक्ति अभी नहीं उभरी है ।

सभी सद्‌गुणों में कर्मफल त्याग का गुण सबसे श्रेष्ठ है । अपने कर्मों के फलाधिकार को ईश्वर और गुरु को समर्पित कर देने से बढ़कर कोई गुण नहीं । हमारी हर क्रिया आम या विशेष सबकुछ ईश्वर के ध्यान में ही हो और भला या बुरा जो फल मिले उसे उन्हें समर्पित करते चलें । 'यत्करोषि' अर्थात् तुम जो कुछ करो सब ज्यों का त्यों ईश्वर को अर्पित कर दो । ऐसा करने से मनुष्य 'संन्यासयोगयुक्तात्मा' बनता है । अर्थात् हमें एक साथ संन्यास और योग दोनों प्राप्त होते हैं । जब हम ईश्वर को अपने कर्म और उसके फल सौंपते हैं तो अपने से तोड़ते हैं, अलग करते हैं, न्यास करते हैं और ईश्वर से जोड़ते हैं, योग करते हैं।

निंदा को सबसे विकट पाप की संज्ञा दी जाती है क्योंकि निंदक सबके पापों का बोझ अपने सर पर उठा लेता है । वह जिस जिसकी रस लेकर निंदा करता है उसके पाप की टोकरी अपने सिर पर उठाकर चलता है । जैसे शहर के डम्पिंग क्षेत्र में शहर का सारा कचरा इकठ्ठा होता है वैसे ही निंदक का हृदय भी दूसरों के पाप के विचारों का डम्पिंग क्षेत्र बन जाता है । जपुजी में गुरुनानक अज्ञान, चोरी, जोर जबरदस्ती से किसी पर सत्ता चलाना, हिंसा, अब्रह्मचर्य, असत्य, आहारादि में अशुद्धि जैसे पापों का उल्लेख करने के बाद कहते हैं कि इन सबसे बढ़कर उन सबकी निंदा करना पाप है ।

परम पूज्य परम भागवत कहते हैं- मनुष्य का हृदय एक कैमरे के समान है, जो देखता है, सुनता है, अंकित हो जाता है इसलिए जो अपने अन्तर को ईश्वर की ओर रखते हैं उनपर उस परमात्मा के गुण आया करते हैं । उनमें ईश्वरीय ज्ञान ईश्वरीय आनन्द उतरता रहता है ।

गुणों का नित्य अनुशीलन भक्ति के लिए आवश्यक है । अनुशीलन के लिए जरूरी है आत्म-निरीक्षण प्रतिक्षण अपना निरीक्षण । हमने दिनभर के अपने व्यवहार में, आचार और विचार से क्या गुण कमाया और कौन सा गुण खोया इसका निरीक्षण और विश्लेषण रात्रि में सोने से पहले अवश्य करें और दूसरे दिन सुधार करने का प्रयत्न करें । यदि आज हममें कोई कमी रही तो कल और सजग रहें। गुणों के नित्य अनुशीलन और परिशीलन से हम देखेंगे कि धीरे-धीरे गुण हमारे अंदर सहजता से उतर रहे हैं और हमारे स्वभाव का हिस्सा बनते जा रहे हैं ।

श्री चरणों में यही प्रार्थना है कि हमें भी ऐसा विवेक दें कि हम भी गुणग्राही बनें । ✦✦✦

साधना का अभिप्रेत–समर्पण योग

– श्री रवीन्द्र प्रसाद वर्मा

अपने आप को किसी अपने से श्रेष्ठ के हाथों में सौंप देना, उसकी मर्जी के अनुरूप जीवन यापन करना समर्पण है । अध्यात्म में स्वयं को गुरु अथवा परमात्मा को सर्वतोभावेन समर्पित कर देना, उनकी मर्जी पर छोड़ देना, खुद को जल का प्रवाह बना देना ताकि माली मेड़ बनाकर जिधर ले जाना चाहे ले जाये समर्पण है । समर्पण लाचारी या विवशता नहीं है । यह तभी संभव है यदि साधक को, जिसे वह समर्पण कर रहा है, उसके प्रति पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ विश्वास हो । परम पूज्य गुरु महाराज जी ने समर्पण की दो स्थितियों का उल्लेख किया है जिसे सूफी मत में रिजा और तवक्कुल कहा जाता है । "रिजा के अर्थ हैं सुख-दु:ख, हर्ष-शोक में समानता रखना मालिक की मर्जी में खुश या राजी रहना, कोई शिकायत भूल के भी नहीं करना और कभी किसी प्रकार की इच्छा दिल में न लाना । और तवक्कुल के अर्थ हैं- मालिक के ऊपर निर्भर रहना, जैसे वह रखना चाहे रहना खुशी के साथ उनको दया के लिए धन्यवाद देते रहना और हमेशा मगन रहना । दूसरे माने में रिजा को निरपेक्षता और तवक्कुल को पूर्ण समर्पण कह सकते हैं"।

परमसंत परम पूज्य पंडित जी महाराज ने दो प्रकार के समर्पण की क्रिया का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि 'ऐसी कुछ संप्रदायों में रीति है कि शिष्य से गुरु उसकी सब वस्तुओं का समर्पण कराता है, यहां तक कि वह अपने को भी गुरु को सौंप देता है । एक तरह से वह गुरु के हाथ बिक जाता है । इसको इस्लाम धर्म में 'वैत' होना कहते हैं ।' इस प्रकार के समर्पण में यदि शिष्य में अपने गुरु के प्रति श्रद्धा-विश्वास की कमी हो तो वह अधिक समय तक नहीं चलता । बहुत से ऐसे गुरु भी होते हैं जो शिष्य का दूसरी जगह का मार्ग रोकने के लिए उसे कहकर समर्पण कराते हैं । अभी शिष्य की पूरी इच्छा नहीं है, परंतु गुरु की आज्ञा मानकर समर्पण कर देता है । जिसे उसका हृदय स्वीकार नहीं करता । ऐसे समर्पण में बहुत संभव है आगे चलकर दिये हुये वचन का पूर्ण निर्वाह न हो सके और शिष्य उस मार्ग को गलत समझ अपने पूर्ववत् लौट आवे ।

समर्पण की दूसरी क्रिया उत्तम है जिसमें गुरु मुख से नहीं कहता परंतु शिष्य का ही अंतर बार-बार कहता है कि हे प्रभो, मेरा सबकुछ आपका है । मेरा कुछ नहीं और जिसको मैं अपना कुछ मानता हूँ, वह शरीर भी आपको सौंपता हूँ बस मैं आपकी शरण हूँ, आपकी शरण हूँ । वह स्थिति जिसमें शिष्य अन्तःकरण से गुरु या ईश्वर को समर्पित हो रहता है वही वास्तविक समर्पण है।

समर्पण की स्वाभाविक परिणति योग है । और लाजमी तौर पर योग की पूर्व शर्त समर्पण है । गुरु अथवा परमात्मा जब भर्ता रूप से साधक को त्रैतापों से उबारते हैं, संसार-सागर की विषय-वासनाओं के ग्राह के चंगुल से गजराज

रूपी जीव को बचाते है, तब उसके मन में सहारा देने वाले के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, श्रद्धा जागृत होती है । उनकी कृपा से अभिभूत वह स्वयं को उनके आश्रित कर देता है । कुरुक्षेत्र के मैदान में भगवान श्री कृष्ण के विश्वरूप दर्शन से अभिभूत अर्जुन के हृदय में श्रद्धा स्वयंस्फूर्त हुयी थी । उसने स्वीकारा कि जिन्हें अब तक वह अपना सखा, सारथी, यादव जानता था वही वास्तव में परमात्मा हैं । परंतु श्रद्धा से आकर्षण तो होता है, उनके सानिध्य में रहने की उनकी वाणी सुनने की इच्छा भी रहती है, पर इसके साथ ही विश्वास का होना आवश्यक है । बिना विश्वास के पूर्ण समर्पण संभव नहीं है । जैसे-जैसे श्रद्धा गहन होती है श्रद्धास्पद से जुड़ाव बढ़ता जाता है उनके विचार मन में भरने लगते हैं, मन जुड़ता है, बुद्धि जुड़ती है, अहं जुड़ता है । उसके सारे तर्क वितर्क, शंकायें मिट जाती हैं । वह गुरु या परमात्मा को अपना सब कुछ, एक मात्र परम हितैषी मान कर अपने आप को उनके चरणों में समर्पित कर देता है।

परमपूज्य गुरु महाराज जी ने तीन प्रकार के विश्वास की चर्चा की है। कुतर्की जिन्होंने थोड़े धार्मिक ग्रन्थों को देखकर या सुनकर अपने को बड़ा जानकार मान लिया है, विश्वास देर में लाते हैं और ले आने पर भी डांवाडोल रहते हैं । अधूरे विद्वानों के विश्वास में सदा अटकाव रहता है क्योंकि उनका तर्क सदा उनके संग रहता है । बाल बुद्धि, अंध विश्वास इससे बेहतर होता है, परंतु इसमें किसी बहकावे में आकर अपने साधन में अश्रद्धा होने का खतरा रहता है । विद्वान जिनकी बुद्धि मंजी हुयी होती है उनके विश्वास के डांवाडोल होने का खतरा नहीं होता, इसलिए इसे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

परम पूज्य गुरु महाराज जी द्वारा प्रणीत साधना समर्पण योग की भावभूमि तैयार करती है। पूज्य श्री कृष्णकांत भैयाजी ने अत्यंत सरल शब्दों में साधना की व्याख्या करते हुये संकेत किया है कि जिस समर्पण योग की बात भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अठारहवें अध्याय में कही उसे गुरु महाराज जी ने पहले ही दिन बताया , वहीं से साधना शुरु करने का निर्देश दिया। 'गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा- सर्व धर्मान्परित्यज मामेकं शरणं ब्रज लेकिन कैसे जुड़ें यह नहीं कहा। न मन हमारे हाथ में है, न बुद्धि हमारे हाथ में है, फिर जुड़ें कैसे । गुरु महाराज की दी हुई साधना प्रक्रिया द्वारा हम सहज ही गुरु से जुड़ जायेंगे, जहाँ आप अपने को सौंप देंगे। गुरु महाराज जी की साधना ईश्वर या गुरु को अपने भीतर भरने की साधना है, अपने मन में, बुद्धि में और अहं में । जैसे-जैसे परमात्मा का प्रकाश (गुरु तत्व) अंतर में भरता जायेगा मन के विकार निकलते जायेंगे, मन निर्मल होता जायेगा और गुरु या परमात्मा व्याप्त होते जायेंगे । श्रद्धा बढ़ती जायेगी। इसके आगे गुरु बुद्धि के स्थान अर्थात् कारण क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । विभिन्न समाधियों के माध्यम से बुद्धि को साफ करते हैं । बुद्धि में मौजूद कल्पनायें समाप्त होती हैं, विचार साफ होते हैं और प्रकृति-प्रदत्त ज्ञान समाप्त होते हैं । साधक को बोध होता है कि वह स्वयं ज्योति पुत्र है जो प्रकृति के आवरण में बंधा हुआ है। वह उसी ज्योति का अंश है जो सब में एवं सर्वत्र व्याप्त है । उसका अहं मैं मेरा तू तेरा का भाव तिरोहित हो गया । न कोई स्त्री है, न पुरुष, न कीट, न पशु । बस आत्मा ही आत्मा है। इस साधन प्रक्रिया के माध्यम से साधक अपनी मूल सहज एवं सरल स्थिति में पहुंच जाता है । वह अपने आप को अपने आराध्य को सौंप देता है और जल में पड़े नमक की डली के मानिन्द अपना अस्तित्व खोकर विलीन हो जाता है । परमात्मा से योग कर पूर्ण आत्मा में रूपान्तरण की इससे सरल सहज साधना अन्यत्र दुर्लभ है ।

✦✦✦

सच्ची डगर

— श्री सुभाष चन्द्र

जिन्दगी में भरी थी अहम् भावना,
द्वार गुरु के पहुँच चूर होने लगी ।
वृत्तियों में छिपी थी कुटिल कामना,
गुरु कृपा दृष्टि से दूर होने लगी ।
जो घृणित कर्म से हो गये थे पतित,
उनमें सद्भावना जागने अब लगी ।
ढूँढ़ते थे जिसे बाह्य संसार में,
पास ही वस्तु वह भासने अब लगी ।
जो अभागा गुरु की शरण आ गया,
भाग्य उसका दिनों-दिन निखरने लगा ।
जन्म-जन्मों से अन्धी गली जो चली,
उस गली पर उजाला बिखरने लगा ।
हम सभी की दशा हीनता पर द्रवित,
अपनी गोदी में सबको बिठाने चले ।
खुल गया द्वार गुरु का सभी के लिये,
अपनी रहमत का दरिया बहाने चले ।
'रामाश्रम' में कुछ भी बनावट नहीं,
साधना का सरल पथ दिखाते रहे ।
जाति की, धर्म की बंदिशें हैं नहीं,
भेद आपस का सबका मिटाते रहे ।

संत–चरित :–

संत दयाबाई का गुरु भक्ति योग

– श्री वीरेन्द्र नाथ भार्गव

भक्तिमति दयाबाई दिल्ली के प्रसिद्ध संत श्री चरणदास की शिष्या थी और श्री सहजोबाई की गुरु बहन होने के साथ-साथ मामा-बुआ की पुत्री होने के नाते भी बहन थी । श्री दयाबाई के जन्म के विषय में प्रसिद्ध है कि उनके नि:संतान पिता एक बार आशा लेकर श्री चरणदासजी के दर्शन हेतु गए और वहाँ उनसे सत्संग का लाभ उठाया । सत्संग के पश्चात् वितरित प्रसाद को उन्होंने अपनी पत्नी को खिला दिया और संयोग वश पत्नी ने गर्भ धारण किया । उनको कन्या की प्राप्ति हुई और उस कन्या को श्री चरणदास की कृपा का प्रसाद मानते हुए दयाबाई नाम रख दिया । बालिका जन्म से ही आध्यात्मिक संस्कार लेकर आई थी तथा बड़े होने तक श्री चरणदास जी के प्रति अज्ञात और अगाध आकर्षण के फलस्वरूप अनेक बार स्वप्न में चरणदासजी के दर्शन किये । माता-पिता विवाह करना चाहते थे किन्तु भगवान कृष्ण के प्रति प्रेम में रंगी श्री दयाबाई ने विवाह नहीं करने की ठान ली । जब उसे आशंका हुई कि उसके माता-पिता उसका विवाह करवा देंगे तब किशोर अवस्था में एक दिन चुपचाप घर छोड़कर श्री चरणदासजी के दर्शन हेतु निकल गई । अलवर क्षेत्र से दिल्ली का मार्ग दूर था और अपने इष्ट चरणदासजी में विश्वास धारण करके निकल जाना खतरे से भरा मार्ग था । किन्तु येन केन श्री दयाबाई श्री चरणदासजी के चरणों में पहुंच ही गई । उसकी दृढ़ आस्था देखकर चरणदासजी ने श्री दयाबाई को दीक्षा देकर अपनी अनन्य शिष्या श्री सहजोबाई के पास रहने हेतु भेज दिया । श्री सहजोबाई के निवास पर लगभग 6-7 वर्षों तक एकांत वास और साधना करते हुए साधना में सफलता मिली, साथ ही वैराग्य भाव की प्रधानता उनमें घर कर गई । श्री सहजोबाई व श्री दयाबाई ने साथ-साथ शब्दमार्ग की साधना की थी किन्तु श्री सहजोबाई में प्रेम की प्रधानता थी। श्री दयाबाई में उपजी विरक्ति में प्रेम के समावेश हेतु चरणदासजी ने दयाबाई को वृंदावन जाने का आदेश दिया । वृन्दावन में भगवान कृष्ण की लीलाभूमि पर उनमें प्रेम भाव का दैवीय संचरण हुआ और वह भगवान के विरह में गोपी की तरह वृंदावन के भूभाग पर विचरण करने लगीं। अंततः प्रेमरस से सराबोर हुआ जानकर श्री दयाबाई को चरणदासजी ने अध्यात्म विद्या से पूर्ण करते हुए आज्ञा प्रदान कर दी कि इस प्रेम योगी साधना का समाज में प्रचार-प्रसार करो। श्री दयाबाई ने अनेक उपदेशों को पद और दोहों में रचकर 'दयाबोध' नामक ग्रंथ की रचना संवत 1818 में

शेषभाग पृष्ठ 32 पर

निष्काम भक्त

— श्री रामकृष्ण गुप्ता

ऐसी धारणा है कि ईश्वर को अपने निष्काम भक्त बहुत प्रिय हैं क्योंकि कामनाएं लेकर आने वाले भक्त तो ईश्वर से सौदा करने आते हैं । जब ईश्वर कण-कण में व्याप्त है तब भला कौन सी ऐसी बात हो सकती है जिसकी उसको खबर न हो । यदि भगवान से कुछ माँगना हो तो उसे ही माँग लेना चाहिये जिससे सभी कुछ प्राप्त हो सकता है । कामनाओं से रहित भक्त के साथ भगवान सदा उनके आस-पास ही रहते हैं । सन्त कबीरदास जी ने लिखा है कि

कबिरा मन मृतक भया, दुर्बल भया शरीर ।
पाछे पाछे हरि फिरें, कहत कबीर कबीर ।।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस भौतिक जगत में जहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह का मायाजाल फैला हुआ है तथा कामनाओं की आँधी चल रही है, एक कामना पूरी नहीं होती कि दूसरी आकर खड़ी हो जाती है, कोई निष्काम भक्त बने कैसे और कैसे वह निष्काम भक्ति करे । हमारे समर्थ गुरु महाराज ने एक ऐसी युक्ति बताई कि उनकी बताई हुई साधना के द्वारा अपने मन पर संयम करो क्योंकि मन एक है जो शरीर के साथ भी मिला हुआ है और आत्मा के साथ भी मिला हुआ है। इसे संसार से हटाकर आत्मा के साथ जोड़ो तथा संसार से नाता तोड़कर आत्मा से जोड़ो । यह काम है तो बहुत कठिन परन्तु करने वालों ने कर दिखाया और जब किसी काम को एक कर सकता है तो दूसरा क्यों नहीं, परन्तु इसके लिये जीते जी मरना होगा । अपने मन को वश में करना होगा । अपने गुरु के बताये हुये मार्ग पर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ आगे बढ़ना होगा ।

पवन पुत्र श्री हनुमान ऐसे ही निष्काम भक्त थे । उनकी अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर स्वयं राम अपने मुख से कहते हैं। कि

सुनु कपि जियँ मानसि जन ऊना ।
तै मम प्रिय लक्षमण ते दूना ।।

कहते हैं कि एक बार माँ सीता अपने मस्तक पर सिन्दूर लगा रही थीं श्री हनुमान जी वहाँ पहुँच गये और पूछने लगे कि माँ सिन्दूर लगाने से क्या होता है ? तो माँ सीता ने बताया कि इससे श्री राम जी प्रसन्न होते हैं । फिर क्या था उन्होंने अपने सारे शरीर पर सिन्दूर लगा लिया । तभी से श्री हनुमान जी की मूर्ति पर सिन्दूर लगाने की प्रथा प्रचलित हुई ।

भगवान श्री राम जब रावण का बध करके अयोध्या वापस आये और जब उनका राजतिलक हुआ तो अंगद, सुग्रीव, हनुमान आदि जो साथ आये थे सभी को कुछ न कुछ आभूषण बाँटे गये । श्री हनुमान जी को मणियों का एक हार मिला । वह दांतों से उसके दाने तोड़ने लगे । एक

तोड़ा, दो तोड़े, तो अन्य सुभटों ने कहा कि वीर हनुमान तुम्हें क्या हो गया है क्या यह माला तोड़ने को है । तब हनुमान जी ने उत्तर दिया कि मैं इन दानों में राम नाम देख रहा हूँ, यदि इनमें वह नहीं है तो हमारे लिये बेकार है । तब सुभटों ने कहा कि वाह हनुमान ! क्या राम सबमें होते हैं, क्या तुम्हारे इस शरीर में भी राम हैं तो हनुमान जी से न रहा गया और अपना हृदय चीर कर दिखाते हुये कहा कि देखो इसमें राम-नाम के सिवा कुछ भी नहीं है ।

श्री हनुमान जी माँ सीता की खोजकर एवं लंका दहन कर जब श्री राम जी के पास आये तो राम जी बड़े प्रसन्न हुये और कहा कि—

सुन कपि तोहि समान उपकारी ।
नहि कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ।।
प्रति उपकार करौं का तोरा ।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं ।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं ।।

तब हनुमान जी इसका श्रेय अपने ऊपर न लेते हुये प्रभु श्री राम से कहने लगे ।

सो सब तव प्रताप रघुराई ।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ।।

ऐसे थे निष्काम भक्त हनुमान, तभी तो आज उनका नाम अमर है और सारे संसार में पूज्यनीय हैं ।

श्री लक्ष्मण जी भी ऐसे ही निष्काम भक्त थे, जो चौदह वर्ष तक अपने प्रभू श्री राम की सेवा में सोये तक नहीं । उन्हें अपने स्वामी श्री राम को प्रसन्न करने और उनकी सेवा करने के अतिरिक्त कुछ भी लेना देना नहीं था । यहाँ तक कि चौदह वर्ष तक उन्होंने अपनी पत्नी उर्मिला को याद तक नहीं किया ।

श्री भरत जी की निष्काम भक्ति तो सर्व विदित है । श्री राम वन गमन के पश्चात् जब श्री भरत जी को ननिहाल से बुलाया गया और उन्हें जब ज्ञात हुआ कि उनके ही कारण श्री राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ है, तो वह ब्याकुल हो गये, और तुरन्त श्री राम को वनवास से वापस लाने के लिये वन जाने को तैयार हुये । सभी अयोध्या वासियों के साथ वन को प्रस्थान किया।

श्री भरद्वाज ऋषि के आश्रम में रात्रि गुजारने के बाद अगले दिन जब श्री राम के पास पहुँचे और उनसे अयोध्या लौट चलने का आग्रह करने लगे । तब श्री राम ने कहा कि भरत तुम जैसा कहोगे मैं बैसा ही करूँगा परन्तु इस बात पर विचार करो कि मेरे वापस चलने से पिता जी को दिया हुआ बचन टूट जायेगा । तब श्री भरत जी ने अपने मन में विचार किया कि सेवक का धर्म तो स्वामी को प्रसन्न रखना है तथा उनकी इच्छानुसार चलना है न कि अपनी इच्छा को उनके ऊपर थोपना । अगले दिन जब श्री राम ने पूछा कि बताओ भरत तुम क्या चाहते हो तो उन्होंने तुरन्त कहा कि :

जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई ।
करुना सागर कीजै सोई ।।

अतः श्री राम जी की आज्ञा पाकर तथा उनके खड़ाऊँ लेकर अयोध्या वापस आ गये और श्री राम जी की खड़ाऊँ को राजगद्दी पर स्थापित करके, स्वयं चौदह वर्ष तक सेवक बन कर अयोध्या की जनता की सेवा करते रहे । ऐसे भक्त को ही निष्काम भक्त कहा जाता है । हमारे गुरु महाराज ने स्पष्ट कर दिया कि इस सत्संग में कोई सांसारिक कामना लेकर न आयें क्योंकि

सांसारिक कामनाओं से वह ईश्वर के जिस मार्ग पर चल रहा है उसमें व्यवधान पड़ सकता है । निष्काम भक्त बनके सच्ची श्रद्धा एवं विश्वास के साथ इस मार्ग पर चलना होगा, तभी सफलता मिलेगी । वह आनन्द जिसकी हम सबको तलाश है, सांसारिक कामनाओं से ऊपर उठकर ही प्राप्त हो सकता है । उसी आनन्द को परमानन्द कहा गया है और जिसके पा लेने के पश्चात् कुछ पाना शेष नहीं रहता । यह लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं ।

हे गुरु ! हम लोग तो मनुष्य जीवन पाकर भी अज्ञानी ही हैं तथा हमारा जीवन पशुवत ही है, परन्तु न जाने कैसे आप की अहेतुकी कृपा ने हम सबको अपने पास बुला लिया है । अब ऐसा विश्वास है कि चाहे हम 'निष्काम भक्त न बन पायें परन्तु आप के बताये हुये मार्ग पर चलने का प्रयास करके आपकी कृपा से प्रेम के भिखारी तो बन ही सकते हैं । हे गुरु, हम सब पर ऐसी ही कृपा बनाये रखें तथा सबका कल्याण करें ।

✦✦✦

पेज 29 का शेष भाग

की । श्री दयाबाई के अनेक अनुयायी बने । कुछ अनुयायियों और गुरु भाइयों के आग्रह पर श्री दयाबाई कानपुर के समीप बिठूर गईं । बिठूर में गंगातट पर एक स्थान विशेष उन्हें रहने के लिए पंसद आया और आजीवन वे वहीं पर रहीं । बिठूर में उनकी प्रसिद्धि सुनकर स्थानीय मुसलमान शासक ने उनकी परीक्षा हेतु अपना एक अनुचर रात्रि को श्री दयाबाई की कुटिया पर भेजा । उस समय श्री दयाबाई ध्यान कर रही थीं और जैसे ही उस व्यक्ति ने कुटिया में झांककर देखा तो वह उनका तेजोमय आभामण्डल देखकर मूर्छित हो गया । प्रात: उस व्यक्ति को चेत हुआ और उसने श्रद्धा से अभिभूत होकर मुसलमान शासक को सत्य वर्णन किया । तब वह शासक स्वयं श्री दयाबाई के दर्शन हेतु पहुंचा और श्री दयाबाई को धन सहित आस-पास की भूमि भेंट की । उस भूमि पर श्री दयाबाई ने कुछ मंदिरों और उपासना स्थलों का निर्माण करवाया । कालांतर में उनकी समाधि भी उसी स्थान पर बनी ।

गुरु के प्रति शिष्य का समर्पण भाव कैसा होना चाहिए इसको श्री दयाबाई के अनुभवी शब्दों से जाना जा सकता है । यथा –

सीस नवै तो तुम्ही कूं, तुमहि से भाखूं दीन ।
जो झगरुं तो तुमहि सूं, तुम चरनन आधीन ।।

दीनबंधु गुरु भगवान से दीनता की पुकार श्री दयाबाई के शब्दों में–

निरपच्छी के पच्च तुम, निराधार के धार ।
मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन प्रान अधार ।।

प्रेमयोगी की साधनावस्था का अनुभव श्री दयाबाई के शब्दों में इस प्रकार है–

'दया' प्रेम उन्मत्त जे, तनकी तनि सुधि नाहिं ।
झुके रहें, हरिरस छके थके नेम व्रत नाहिं ।।
प्रेम मगन जे साधना, विचरत रहत निसंक ।
हरिरस के भाते 'दया' गिने राव ना रंक ।।
हरिरस भाते जे रहें तिनको मतो अगाध ।
त्रिभुवन की संपति दया, तृन सम जानत साध।।

✦✦✦

समाचार इधर–उधर के :–

कई रोगों की दवा है हींग

घाव यदि कुछ समय तक खुला रहे तो उसमें छोटे-छोटे कीड़े पड़ जाते हैं। उस पर हींग का चूर्ण डालने से ये कीड़े मर जाते हैं ।

यदि शरीर के किसी हिस्से में कांटा लग गया हो तो उस स्थान पर हींग का घोल भर दें। कुछ समय में कांटा स्वत: बाहर निकल आएगा।

पेट के दर्द, अफरा और ऐंठन में अजवाइन और नमक के साथ हींग का सेवन करने से लाभ होता है।

दांतों में कीड़ा लग जाने पर रात्रि को दांत में हींग दबा कर सोएं। कीड़ा खुद-ब-खुद निकल जाएगा।

पेट में कीड़े हो जाने पर हींग को पानी में घोल कर एनिमा देने से पेट के कीड़े मरकर शीघ्र निकल जाते हैं।

हींग का लेप बबासीर, तिल्ली आदि रोगों में काफी लाभप्रद है।

हींग भूनकर गुड़ के साथ सेबन करने से दाद, खाज और खुजली में लाभ होता है ।

यदि लगातार और काफी हिचकियां आ रही हैं तो हींग की धूनी लीजिए। हिचकियां रुक जाएंगी।

यदि आपको कब्जियत की शिकायत है तो हींग के चूर्ण में थोड़ा सा मीठा सोडा मिलाकर फांक लें।

थोड़ी-सी भुनी हुई हींग रुई के फाहे में लपेट कर दाढ़ पर रखने से दाढ़ का दर्द कम हो जाता है ।

अधिक खा लेने या कोई भारी चीज खा लेने से अफरा हो गया हो तो हींग को पीस कर उसमें काला नमक मिलाकर हल्के गरम पानी से सेबन करने से लाभ होगा।

हींग में रोग प्रतिरोधक (एंटीसेप्टिक) गुण काफी अधिक होते हैं। दाद, खुजली व अन्य चर्म रोगों में इसे पानी में घिस कर उन स्थानों पर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होगा। **–धीर साप्ताहिक साभार**

घरेलू औषधि : हरा धनिया

आमतौर पर हरे धनिये का प्रयोग विभिन्न व्यंजनों को सजाने एवं उनकी सुगंध बढ़ाने हेतु किया जाता है मगर यह स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण है।

- चेहरे पर तिल होने पर रोजाना हरे धनिये की पत्तियों को रगड़ने से लाभ होता है ।
- पेशाब में जलन होने पर हरे धनिये का शरबत पियें।
- शरीर में कमजोरी महसूस हो और चक्कर आते हों तो दो चम्मच धनिये के रस में दस ग्राम मिश्री व आधी कटोरी पानी मिलाकर सुबह-शाम लेने से फायदा होता है।
- हरे धनिये के नियमित प्रयोग से आंखों की रोशनी बढ़ती है क्योंकि इसमें विटामिन ए भरपूर मात्रा में होता है जो आंखों के लिए आवश्यक है ।
- सिर के बाल झड़ने पर हरे धनिये का रस लगायें।
- नींद न आती हो तो हरे धनिये में मिश्री मिलाकर चाशनी बनायें। दो चम्मच सुबह-शाम पानी के साथ लें।
- झाइयां पड़ने पर धनिये को उबालकर उस पानी को चेहरे पर लगाने से लाभ होता है ।
- गुर्दे में पथरी होने पर धनिये का नियमित सेवन करें।

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का सत्संग कार्यक्रम/भण्डारा

अहमदाबाद भण्डारा

दिनांक : 9 जनवरी (सुबह से), 10 एवं 11 जनवरी 2015

सत्संग स्थल : महेश्वरी सेवा समिति, राजस्थान हिन्दी हाईस्कूल के पीछे शाहीबाग, अहमदाबाद-4

सम्पर्क सूत्र : श्री मुरारी लाल बागला मो. 07922680381, 09426312421

: श्री राजेन्द्र प्रसाद गुप्ता मो. 09898044702

बड़ौदा

दिनांक : 6 (सायं से), 7 एवं 8 जनवरी 2015

सत्संग स्थल : प्रजापति भवन, अभिलाषा चौराहा, स्वाति बस स्टैण्ड के सामने, न्यू समा रोड

सम्पर्क सूत्र : श्री के. एम. भट्ट मो. 09409231942

: श्री चन्द्ररूप सिंह सूबेदार मो. 09537915824

इंदिरा नगर (लखनऊ)

दिनांक : 27 (सायं से), 28 एवं 29 जनवरी 2015

सत्संग स्थल : H. No. - 448, इंदिरा नगर, सेक्टर 18, अस्मिता पार्क, उजाला मेडीकल सेंटर के पास

सम्पर्क सूत्र : श्री करतार सावलानी मो. 09415774737

कोलकता भण्डारा

सम्पर्क सूत्र : श्री दीपक शर्मा मो. 09831082016

: श्री विजय टिब्रेवाल मो. 09331246003

दिवंगत आत्माओं के लिए प्रार्थना

परम पूज्य श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि सितम्बर 2014 माह के दौरान रामाश्रम सत्संग (मथुरा) से सम्बन्धित सभी दिवंगत आत्माओं को निजधाम में स्थान दें एवम् शोक संतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें ।

वर्ष : 82 [नवम्बर-2014] अंक : 04

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

※ साधन के नियम ※

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्य उद्देश्य है।

2. साधन प्रत्येक मास की **20-21** तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की **15** तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।

3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।

4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।

5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।

6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **150/=** है। एक प्रति का शुल्क रुपये **16/=** है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये **20/=** है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये **1400/=** है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।

7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **1350/** है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये **2500/** है।

8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनी-आर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो "साधन हिन्दी मन्थली" के नाम **813**, डैम्पियर नगर, मथुरा-**281001** को भेजा जाये।

9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनी आर्डर ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence to Post without Prepayment: Licence No.-AGRA/WPP-01/2012-2014
"Registered" Postal Regd.No.MTR/28/2012-2014 : R.N.I. No - 2358 / 57
Date of Publication: 8th to 15th of every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800